

(भारतीय आर्य भाषा परिवार)

(1) **भाषा विज्ञान की परिभाषा** :-विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई भाषा-विज्ञान की परिभाषाएं :-

(i) डॉ० श्याम सुन्दरदास के अनुसार-भाषा विज्ञान भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट, उसके विकास तथा उसके द्वारा की वैज्ञानिक व्याख्या करता है।

(ii) डॉ० मंगलदेव शास्त्री के अनुसार भाषा विज्ञान की परिभाषा-“भाषा-विज्ञान, उस विज्ञान को कहते हैं जिसमें (क) सामान्य रूप से मानवी भाषा का (ख)। किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का, अन्ततः (ग) भाषाओं या प्रादेशिक भाषाओं के वर्गों की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक विचार किया जाता है।

(iii) डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार-“जिस विज्ञान के अन्तर्गत वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे भाषा की उत्पत्ति, गठन प्रकृति, विकास आदि की सम्पक् व्याख्या करते हुए, इन सभी के विषयों में सिद्धान्तों का निधीकरण हो उसे भाषा-विज्ञान कहते हैं।

(iv) Dr. P.D. Gune, An introduction to comparative philology-Campartive philology or simply philology is the science of language. philology strictly means the study of language from the literary point of view.

(v) प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार-भाषा विज्ञान का सीधे अर्थ है, भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार विशिष्ट ज्ञान भाषा-विज्ञान कहलायेगा।

(2) **भारतीय आर्य भाषा परिवार** :-

प्राचिन एवं मध्यकालीन आर्य भाषाएँ :-वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि प्राकृत, अपभ्रंश भाषाएँ- भारतीय आर्य भाषाओं का विभाजन:-

(i) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ- 1500 ई.पू. से 500 ई.पू.

(ii) मध्य कालीन आर्य भाषाएँ- 500 ई.पू. से 1000 ई.पू.

(iii) आधुनिक भारतीय भाषाएँ- 1000 ई.पू. से अब तक

(अ) **आर्य भाषाओं का विकास** :-संसार में प्रचलित भाषा परिवारों की लगभग 3000 भाषाएं प्रचलित हैं इन परिवारों में भारतीय भाषा परिवार अत्यन्त महत्वपूर्ण समूह व्यापक विविधता सम्पन्न और लम्बी परम्परा के इतिहास को आत्मसात किए हैं यह मध्य एशिया के आर्यों की भाषा थी जब आर्य साधनों की तलाश में बिखरने लगे तब उनकी एक शाखा यूरोप की तरफ गयी तथा दूसरी ईरान होते हुए भारत आयी यूरोपीय भाषा से ग्रीक लेटिन जर्मनीक भाषाएं विकसित हुईं तथा दूसरी शाखा भारत ईरानी कहलायी इसकी ईरानी व भारतीय दो शाखाओं में ईरानी भाषा का प्रतिनिधित्व जिन्दावेस्ता। पारसियों का धर्म ग्रन्थ व भारतीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व ऋग्वेद

करता है लेकिन वैदिक संहिताओं की भाषा में भी एकरूपता नहीं है कुछ की भाषा बहुत पूर्ववर्ती है, तो कुछ की परवर्ती उदाहरणार्थ अकेले ऋग्वेद में ही प्रथम और दसवें मण्डलों की भाषा तो बाद की है और शेष की पुरानी यही पुरानी भाषा अपेक्षाकृत अवेस्ता के निकट है अन्य संहिताएं (यजुसाम, अथर्व) और बाद की है वैदिक संहिताओं की भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा से कुछ भिन्न है क्योंकि यह काव्य-भाषा है उस समय तक आर्यों का केन्द्र सदा सिन्धु या आधुनिक पंजाब था ब्राहमणे, उपनिषदों की भाषा कुछ अपवादों को छोड़कर संहिताओं के बाद की है इसमें उतनी जटिलता एवं रूपाधिक्य नहीं इनके गद्द भाग की भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा के बहुत निकट है इस समय तक आर्यों का केन्द्र मध्यप्रदेश हो चुका था, यद्यपि इधर की भाषा उत्तर जितनी शुद्ध नहीं थी। इस भाषा का काल के बाद का है भाषा का और विकसित रूप सूत्रों में मिलता है। इसका काल 700 ई.पू. से बाद का है यह संस्कृत के काफी पास पहुँच गई है, यद्यपि उसमें पसणिनीय संस्कृत की एकरूपता नहीं है पाणिनी ने अपने व्याकरण में संस्कृत के उदीच्य में प्रयुक्त रूप के अपेक्षाकृत अधिक परिनिष्ठत एवं पण्डितों में मान्य रूप को नियमबद्ध किया जो सदा-सर्वदा के लिए लौकिक या क्लैसिकल संस्कृत का सर्वमान्य आदर्श बन गया पाणिनी की रचना के बाद बोलचाल की भाषा पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आधुनिक भाषाओं के रूप में विकसित करती आज तक आई है, किन्तु संस्कृत में साहित्य रचना भी इसके समानान्तर होती चली आ रही है, जो मूलतः पाणिनीय संस्कृत होने पर भी हर युग की बोलचाल की भाषा का अनेक दृष्टियों से कुछ प्रभाव लिये हुए है और यही कारण है कि बोलचाल की भाषा न होने पर भी, उस साहित्यिक संस्कृत में विकास होता आया है। रामायण, महाभारत की भाषा पाणिनी के बाद की है पुराने पुराणों की भाषा और भी परवर्ती हैं फिर कालिदास से होते क्लैसिकल संस्कृत हितोपदेश तक तथा और आगे तक आयी।

इस प्राचीन आर्य भाषा के वैदिक और लौकिक संस्कृत दो रूप मिलते हैं।

(ब) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं के रूप में मुख्य भाषाओं का इतिहास वैदिक संस्कृत व लौकिक संस्कृत

- (1) वैदिक आर्य भाषा-आर्यों की भाषा के प्राचीन भाषाओं के उदाहरण ऋग्वेद में मिलते हैं यह वैदिक साहित्य संहिता ब्राहमण और उपनिषद् तीनों भागों में बांटा जाता है यह भाषा वैदिक संस्कृत (छान्दर्स) कहलायी इससे 52 मूल ध्वनिया 13 स्वर 39 व्यंजन व्यवर्तीक शब्द रूपों का महर्षि याशांक के नाम आख्यत उपसर्ग और नियात (प्रत्यय) चार रूपों में विभक्त किया है।

यह छान्दस वैदिक संस्कृत धीरे-धीरे जटिल और कठिन होती गयी जिससे वह (सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य नहीं रही) आर्यवर जातियों के सम्पर्क में आने पर इस भाषा में कई परिवर्तन आये तथा कई रूपों में विभक्त हुई जिससे एक जन भाषा लौकिक संस्कृत के रूप में उभरी थी वैदिक संस्कृत की तीन बोलियाँ प्रचाया (बिहार, बंगाल) मध्य एशिया (उत्तर प्रदेश) (पंजाब, पश्चिमी उत्तर-प्रदेश, अफगानिस्तान) तक का प्रदेश में विकसित हुई यों इन सभी में भाषा का कोई एक सुनिश्चित रूप नहीं है, वैदिक साहित्य में इस भाषा का विकास होता दिखता है फिर भी कुछ ध्वन्यात्मक एवं व्याकरणिक बातें ऐसी हैं, जिनको वैदिक की सामान्य विशेषताएं माना जा सकता है तत्कालीन बोलचाल की भाषा इसके समीप रही होगी, किन्तु इनका आशय यह नहीं कि बोलचाल की भाषा के सभी रूप इसमें सुरक्षित हैं।

वैदिक संस्कृत की रूपगत एवं ध्वनिगत अव्यवस्था को रोकने के लिए पाणिनी ने उदिचिया बोली के आधार पर अपने ग्रन्थ अष्टाध्यायी का प्रणय किया और ई.पू. 500 में संस्कृत (लौकिक भाषा अस्तित्व में आर्य) पाणिनी ने वैदिक संस्कृत व देववाणी व लौकिक संस्कृत को भी भाषा कहा था जब संस्कृत एक सीमित वर्ग की भाषा रह गई तो परिणाम स्वरूप प्राकृतों का विकास हुआ।

- (ii) **ध्वनियाँ** :- मूल भारोपीय एवं भारत-ईरानी से संस्कृत की (वैदिक तथा लौकिक) कुछ प्रमुख एवं महत्वपूर्ण ध्वनियों का विकास किस रूप में हुआ, कुछ स्थानों पर तो भारोपीय के पुनः निर्मित तारांकित रूप दिये गये हैं और कुछ में मात्र ग्रीक या लैटिन आदि के रूप दिये गये हैं उदाहरण के अभाव में कहीं-कहीं अवेस्ता से ही तुलना करके संतोष करना पड़ता है। भारतीय आर्य भाषा में, ईरानियों से अलग होने के बाद क्या-क्या प्रमुख परिवर्तन हुए, परिवर्तनों से वे कितने भिन्न थे प्रमुख बातें ये हैं। मूल भारत ईरानी जो ज, तथा ज ध्वनियाँ थी, प्राचीन ईरानी से क्रमशः ज् तथा ज़ हो गई किन्तु संस्कृत में ज् का वो ज् रहा ही ज् का भी (ज) (अवे: जानु, सं, जानु, प्राचीन. का. सं. जीव) हो गया इस प्रकार दोनों ध्वनियों के स्थान पर एक ध्वनि हो गई।

(स) **वैदिक भाषा की विशेषताएँ :-**

प्रत्येक भाषा का अपना विशिष्ट स्वरूप होता है प्रत्येक भाषा अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण अपना पृथक अस्तित्व रखती है किसी भाषा की ऐसी विशेषताएँ ही उसे अन्य भाषाओं से पृथक करती हैं इस दृष्टि से वैदिक भाषा की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ यहाँ प्रस्तुत हैं।

- (i) वैदिक भाषा में स्वरों के ह्रस्व और दीर्घ उच्चारण के साथ ही उनका उच्चारण भी होता है, जैसे आसी इ तू, विन्दती इ इत्यादी।
- (ii) वैदिक भाषा में 'लृ' स्वर का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है।
- (iii) वैदिक भाषा में संगीतात्मक स्वराघात का बहुत महत्व है इसमें तीन प्रकार के स्वर-उदात्त, अनुदात्त, स्वरित। वैदिक मन्त्रों के उच्चारण में इनका ध्यान रखना अनिवार्य होता है। स्वर परिवर्तन से शब्दों के अर्थों में भी

परिवर्तन हो जाता है। 'इन्द्रशत्रु' शब्द इसका प्रसिद्ध उदाहरण है भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी वैदिक भाषा की स्वराघात प्रधानता का बहुत महत्व है।

(iv) प्राचीन वैदिक में 'ल्' के स्थान पर प्रायः 'र' का व्यवहार मिलता है। 'सलिल के स्थान पर 'सरिर'।

“आज वैदिक भाषा का जो स्वरूप हमें उपलब्ध होता है वह तत्कालीन ऐसी अनेक बोलियों का मिलाजुला रूप है, जिनमें देश विभिन्नता, काल-विभिन्नता दोनों का ही होना संभव है। सम्भवतः उस काल की जनसामान्य की विविध बोलियों का ही हिन्दी की खड़ी बोली के समान एक परिनिष्ठ साहित्यिक रूप वह वैदिक भाषा है। जो हमें आज ऋग्वेद में उपलब्ध होती है।”

इस विवेचन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है, कि प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में वैदिक भाषा का विशेष महत्व है। वैदिक भाषा की ध्वनियाँ विकास क्रम की दृष्टि से मूल भारोपीय भाषा से प्रभावित मानी जाती हैं। वैदिक संस्कृत की अपनी अलग विशेषताएँ हैं। समस्त वैदिक साहित्य में भाषागत जो अनेकरूपता दिखायी देती है, इससे यह प्रतीत होता है कि उस समय अनेक बोलियों का प्रचलन था, जिनकी ध्वनियों का प्रभाव वैदिक भाषा पर भी माना जाता है।

(लौकिक संस्कृत)

भाषा के अर्थ में 'संस्कृत' (संस्कार की गई, शिष्ट या अप्रकृत) भाषा का प्रथम वाल्मीकि रामायण में मिलता है। वैदिक काल में भाषा के तीन भौगोलिक रूपों—उत्तरी, मध्य देशीय, पूर्वी—का उल्लेख किया जा चुका है। लौकिक संस्कृत का मूल आधार इसमें बोली थी। यों पाणिनी ने अन्यो के भी कुछ रूप आदि लिये हैं और उन्हें वैकल्पिक कहा है। इस तरह मध्य देशीय तथा पूर्वी का भी संस्कृत पर कुछ प्रभाव है। लौकिक या क्लैसिकल संस्कृत साहित्यिक भाषा है। अतः जिस प्रकार हिन्दी में जयशंकर प्रसाद की गद्द या पद्द-भाषा को बोलचाल की भाषा नहीं कह सकते, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जिस प्रकार प्रसाद जी कि भाषा का आधार मानक खड़ी बोली हिन्दी है जो बोलचाल की भाषा है, उसी प्रकार पाणिनीय संस्कृत भी तत्कालीन पण्डित समाज की बोलचाल की भाषा है, पर आधारित है, पाणिनी द्वारा उसके लिए भाषा (भाष्-बोलना) शब्द का प्रयोग, सूत्र 'प्रत्यभिदेडशूदं (दूर से बुलाने में 'प्लुत' के प्रयोग) का उनके द्वारा उल्लेख बोलचाल के कारण विकसित संस्कृत को व्याकरण की परिधि में बाँधने के लिए काव्यायन द्वारा वार्तिको की रचना ये बातें यह सिद्ध करती है कि संस्कृत कभी बोलचाल की भाषा अवश्य थी। अतः हार्नले, वेबर तथा ग्रियरुनि आदि पश्चिमी विद्वानों का यह कथन कि संस्कृत बोलचाल की भाषा नहीं थी, निराधार है।

प्रमुख विशेषताएँ :- ऊपर वैदिक भाषा की प्रमुख विशेषताएँ उल्लिखित हैं। लौकिक संस्कृत उससे मूलतः बहुत अधिक भिन्न नहीं है। इसीलिए इसकी सभी विशेषताओं को विस्तार से अलग गिनाने की आवश्यकता नहीं। यहाँ केवल वैदिक और लौकिक संस्कृत में अन्तरों का ही उल्लेख किया जा रहा है (1) वैदिक भाषा का लौकिक की

तरह मानवी करण नहीं हुआ था, इसी कारण लौकिक जिस रूप में एकरूप एवं साहित्यिक है, वैदिक नहीं हैं (2) वैदिक में जहाँ मानवीकरण एवं नियमन न होने से रूप की जटिलताएँ हैं, अनेक रूपताओं एवं अपवादों का अधिक्थ है लौकिक में वे या तो है ही नहीं या तो है भी तो वैदिक की तुलना में बहुत ही कम।

- (3) वैदिक में 'लृ' 'ऋ' के उच्चारण स्वरत् होते थे। संस्कृत में आकर यह कदाचित 'लि' 'रि' जैसे उच्चारित होने लगी थी (4) ऐ.ओ. के उच्चारण वैदिक में आइ, आउ थे, किन्तु लौकिक संस्कृत में 'अउ' हो गए।
- (5) ए, ओ का उच्चारण वैदिक में 'अइ' था, अर्थात् यह संयुक्त स्वर थे। किन्तु संस्कृत में यह मूल स्वर हो गए।
- (6) वैदिक में संगीतात्मक स्वराघात था इसके विरुद्ध लौकिक संस्कृत में संगीतात्मक स्वराघात के स्थान पर कदाचित् बलात्मक स्वराघात के बीच यहीं मिलने लगते हैं।

क्रिया रूपों में कुछ प्रमुख अन्तर ये हैं:

- (क) वैदिक में लकारों में विशेष प्रतिबन्ध नहीं हैं। लुङ्, लडू, लिट् में पयेक्षादि का भेद नहीं है। यहाँ तक कि कभी-कभी इनका कालेतर प्रयोग भी मिलता है। किन्तु संस्कृत में ऐसा नहीं है। वैदिक का लेट् लौकिक में नहीं है, यर्थात् उसमें उत्तम पुरुष के तीन रूप लौकिक के लोट् में आ गए हैं। वैदिक में लङ्, लुङ्, लृट्, में भूतकरण अ-नहीं मिलता, यद्यपि लौकिक में यह आवश्यक हैं।
- (ड) वैदिक में लिट् वर्तमान के अर्थ में था, किन्तु लौकिक में यह परोक्ष भूत के लिए आता है।
- (7) वैदिक में विजातीय शब्द आये थे-विशेषतः द्रविड़ एवं अस्ट्रिक से, किन्तु लौकिक संस्कृत में उनकी संख्या बहुत बढ़ गई। (दो हजार के लगभग)

द्रविड़ शब्द →

संस्कृत में द्रविड़ से एक हजार से ऊपर शब्द आए हैं। कुछ उदाहरण यह हैं: कीर (तोता), कुक्कर (कुत्ता), धुण (धुन), नक्र (घड़ियाल), मर्कट (बन्दर), मीन (मछली), अर्क (मन्दार), कानन (जंगल)।

आस्ट्रिक शब्द →

संस्कृत में आस्ट्रिक के भी सौ से ऊपर शब्द हैं, कुछ उदाहरण-ताम्बूल, शृंगार, आकुल, आपीड़ (मुकुट), कबरी (बाल), कुविन्द्र (जुलाह), खिकिर (लोमड़ी), आदि। यूनानी शब्द-यवन, यवनिक, द्रम्म (दाम), होड़ा (होड़ा), रोमन शब्द-दीनार। अरबी शब्द-रमल, इक्कावाल (ज्योतिष में सौभाग्य) ईरानी शब्द-हिन्दी, बारबाण, ताजिक (ईरानी व्यक्ति) तुर्कि शब्द-तुष्कर, खच्चर चीनी शब्द: (चीलांशुक, चीलचोलक) तथा मसाट (एक रत्न) आदि।

बोलियाँ-

वैदिक भाषा के प्रसंग में पश्चिमोत्तरी (या पश्चिमी या उत्तरी), मध्य देशी या (मध्यवर्ती) तथा पूर्वी, इन तीन बोलियों का उल्लेख किया गया है डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार संस्कृत काल में आर्य-भाषा-भाषी प्रदेश में कदाचित् एक दक्षिण रूप भी जन्म ले चुका था।

मध्य कालीन आर्य भाषाएँ— (पालि, प्राकृत व अपभ्रंश भाषाएँ)

प्राकृत संस्कृत के समान साहित्यिक भाषा नहीं थी साहित्य की प्रधानता की दृष्टि से मध्यकालीन आर्य भाषाओं को तीन मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

- (1) पालि तथा अशोक की धर्म लिपिया (500 ई.पू. से 1 ई.पू.)
- (2) साहित्यिक प्राकृत (1 ई.पू. से पू.)
- (3) अपभ्रंश भाषाएं (500 ई.पू. से 1000 ई.पू.)

(i) पालि भाषा का विकास :—प्राकृत का प्रथम उत्थान पालि और अशोक के शिलालेख की प्राकृतों के रूप में हुआ है बोद्य ग्रन्थ (अभिधनत्य दीपिका) में पालि के अर्थ पर विचार किया गया है चौथी सदी में श्रीलंका में दिपवंश नामक ग्रन्थ में सर्वप्रथम पालि शब्द का प्रयोग मिलता है पालि शब्द का अर्थ "बुध की वाणी" अर्थ में किया जाता है भाषा के अर्थ में मागधी के रूप में किया जाता था यूरोप के लोगो ने पालि शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ में किया। प्रारम्भ में त्रिपटिक ग्रन्थों में पालि का प्रयोग होता था पालि किसी प्रदेश विशेष की भाषा नहीं है पालि एक मिश्र भाषा है जिसके मध्य देश की बोलियों की प्रधानता हैं। पालि में तद्भव शब्दों की अधिकता है तत्सम तथा देशी शब्दों का बहुत कम प्रयोग है इसमें अनार्य भाषा के शब्द मिलते हैं कच्चाण पालि का महत्वपूर्ण व्याकरण है अशोक ने इसी भाषा में ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपि में कई शिलालेख खुदवाये थे।

(ii) पालि भाषा का इतिहास :—पालि शब्द के मूल अर्थ तथा प्रचलित अर्थ से यह स्पष्ट होता है कि पालि का संबंध भगवान बुध के उपदेशों से अर्थात् कोध साहित्य से है पालि साहित्य के दो वर्ग (क) पिटक (ख) अनुपिटक नाम से है इसके अन्तर्गत 'जातक कथाएं' धम्मपद, बुधघोष की 'अटठकथा तथा महावंश आदि प्रमुख रूप से आते हैं भारत की भाषाओं के अतिरिक्त लंका, बर्मा, तिब्बत, चीन, स्याम देश की भाषाओं पर भी पालि का प्रभाव कम या अधिक मात्रा में पड़ा है मोटे रूप से इसका काल 5 वीं सदी ई.पू. से पहली सदी तक है। यो कुछ लोगों ने इसका काल छठी सदी ई.पू. से दूसरी ई.पू. तक भी माना है। श्रीलंका के बौद्धों की यह धारणा है कि यह मगध की बोली थी। इसलिए वे लोग पालि को मागधी भी कहते हैं। पालि ग्रन्थों में मूल भाषा के लिए मागधी शब्द का प्रयोग इसी और संकेत करता है सा मागधी मूल भाषा नरा मायादिकप्पिका। इसलिए डॉ० श्याम सुन्दर दास तथा चाइल्डर्स आदि कई अन्य विद्वान इसे मगध की भाषा मानते हैं। किन्तु भाषा की विवेचना करने पर यह बातें अशुद्ध ठहरती हैं।

- (1) गार्डगर, विडिंस इसे मागधी का ही एक रूप मानते हैं, यद्यपि इसे पूरे देश की भाषा होने के कारण इसमें अन्य बोलियों के तत्व भी स्वीकार करते हैं।
- (2) ग्रियर्सन ने इसे मागधी माना था यद्यपि इस पर पैशाची का प्रभाव भी स्वीकार किया गया था।

- (3) ओल्डनबर्ग ने खाखेल के खड़गिरी (कलिंग) शिलालेख से पालि की समानता देख पालि को कलिंग की भाषा कहा था।
- (4) ल्यूडर्ज पालि को पुरानी अर्धमागधी से संबद्ध मानते हैं।
- (5) रीज़ डविड्ज ने इसे कौसल की बोली कहा है।

उपर्युक्त मतों से एक बात स्पष्ट है कि पालि में विभिन्न बोलियों के तत्व हैं इसी कारण विभिन्न स्थानों से संबद्ध किया है वस्तुतः अपने मूल में पालि मध्य प्रदेश की भाषा है ऊपर कथित सू०, ल०, ओ० का उसमें मिलना भी इसी का प्रमाण है यों उस समय वह पूरे भारत में एक अंतर्प्रान्तीय भाषा जैसी थीं

- (iii) बोली एवं भाषा रूप :- पालि काल में आर्य-भाषी भारत में ही चार बोलियाँ थीं, जिनका उल्लेख लौकिक संस्कृत के प्रसंग में किया जा चुका है: पश्चिमोत्तरी, दक्षिणी, मध्यवृत्ति तथा पूर्वी। हाँ संस्कृत काल की तुलना में उनके अन्तर कुछ उभर आये थे।

इसी प्रसंग में पालि भाषा में विकास का भी उल्लेख किया जा सकता है। पालि साहित्य देखने से पता चलता है कि आधुनिक पालि का एक रूप नहीं रहा है। उसकी कम से कम चार सीढ़ियों का अनुमान लगता है भाषा की पहली सीढ़ी त्रिपिटक (सुत, विलय, अभिधम्म) की गाथाओं में मिलती है यह पालि का प्राचीनतम रूप है इसमें रूपों का बाहुल्य है यह भाषा वैदिक संस्कृत के बहुत निकट है भाषा का इससे कुछ विकसित रूप त्रिपिटक के गद्द भाग में मिलता है यहां रूप कम है और भाषा में अपेक्षाकृत एकरूपता है इसमें कुछ ऐसे नये रूप भी मिलते हैं, जो प्रथम में नहीं हैं, साथ ही प्रथम के कई पुराने रूपों को इसमें स्थान नहीं मिला है पालि के विकास की तीसरी सीढ़ी और बाद के गद्द जैसे 'मिलिन्दपन्द्र' या 'बुधधोव' की 'अट्टकथा' आदि में मिलती है चौथी सीढ़ी उत्तर कालीन काव्य ग्रन्थों— जैसे दीपवंस, महावंश आदि की भाषा में मिलती है इस रूप पर संस्कृत का पर्याप्त प्रभाव है, साथ ही इस भाषा में जीवन के लक्षण नहीं हैं एक कृत्रिमता—सी है, जो यह स्पष्ट कर देती है कि पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर इसका भवन खड़ा है।

- (iv) पालि भाषा की कुछ प्रमुख विशेषताएँ :- ध्वनियाँ —

- (1) वैदिक ध्वनियों में से अधिकांश ध्वनियाँ पालि में मिलती हैं यहाँ तक कि वैदिक भाषा की क् और ठ् ध्वनियों भी संस्कृत में लुप्त हो गयी थी, पालि में मिलती हैं।
- (2) वैदिक ध्वनियों में से ऋ, ॠ, ऐ, औ (4स्वर) श्, ष्, विसर्ग, अघोषह, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय (6व्यंजन) ध्वनियों का पालि में अभाव है।
- (3) ह्रस्व एँ, ऑ—ये दो नयी रक्त ध्वनियाँ पालि में मिलती हैं।
ध्वनि परिवर्तन:-
- (4) स्वरो के मध्य के 'क्' 'द्' प्रायः ढ, व्ह हो जाते हैं

- (5) अनेक अघोष व्यंजन सघोष हो जाते हैं: जैसे-क्-ग् में, च-ज में तथा त्-द् में परिवर्तन हो जाता है।
उदाहारण-साकल-सागल, सुच-सुजा तथा उताहो-उदाहो।
- (6) श् और ष् के स्थान पर केवल स् ही मिलता है। एषः-ऐसो।
- (7) संयुक्त व्यंजनो का प्रायः समीकरण हो जाता है जैसे-धर्म-धम्म, कर्म-कम्म, तस्य-तस्य आदि।
- (8) पालि में बलात्मक स्वराघात का प्रयोग होता है।
- (9) इसी प्रकार स्वर भक्ति (आर्य-अरिय), विषमीकरण तथा विपर्यय की प्रवृत्ति पालि में बहुत अधिक हैं।

(प्राकृत)

3. साहित्य प्राकृत भाषाएँ :-पहली सदी ई.पू. से 500 ई तक प्राकृत भाषाएँ विकसित होकर साहित्य में सम्मानित हुई इसमें 200 ई.पू. से 200 ई. तक का काल दृष्टि से संक्रान्ति काल है जिस पर पालि तथा शिला लेखिय प्राकृत का प्रभाव है तथा बोलियों से प्राकृतों के लक्षण भी स्पष्ट होते हैं यह संक्रान्ति कालीन भाषा अश्व घोष के नाटको धम्मपद की प्राकृत और लिए प्राकृत आदि में दिखायी देती है।

प्राकृत-भाषा के सर्वप्रथम व्याकरण वररुचि प्राकृतों के साथ गाथा नाम का भी प्रचलन रहा है बौधो और जैनों की बहुत सी रचनाएँ गाथा रूप में है जातक भाषा ललित विस्तार और अवदान सतक की भाषा में इसके उदाहारण मिलते हैं मैक्समूलर ने इस संस्कृत और पालि के बोध की भाषा माना है पुरुषोत्तम देव का प्राकृतानुशासन ग्रन्थ प्राकृत भाषाओं पर प्रकाश डालता है।

काल विभाजन की दृष्टि से मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के दूसरे काल की भाषा प्राकृत है। यद्यपि मध्यकाल की सभी भारतीय आर्य भाषाएँ सामान्यतया प्राकृत ही कहीं जाती है, तथापि मुख्यरूप से 'प्राकृत' नाम इस काल साहित्यिक भाषाओं का ही है। इनका समय ईस्वी प्रथम शताब्दी से ई. पाँचवी शताब्दी तक है।

- (अ) **प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति** :- (1) 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति कुछ वैयाकरणों के अनुसार -'प्राक्+कृत' है अर्थात् जो संस्कृत से पूर्व की बनी हुई है। पाश्चात्य विद्वान 'पिशेल' ने भी इसी मत का उल्लेख किया है। इस अर्थ में संस्कृत की मूल भाषा ही 'प्राकृत' भाषा है।
- (2) हेमचन्द्र, मार्कण्डेय तथा वासुदेव आदि प्राकृत व्याकरणों के अनुसार 'प्रकृति संस्कृतम्, तत्र भवं प्राकृतमुच्चयते, अर्थात् प्रकृति (संस्कृत) से उत्पन्न भाषा ही प्राकृत है।
- (3) किन्तु प्राकृत शब्द का सही अर्थ है- प्राकृत अर्थात् स्वाभाविक या असंस्कृत। जब एक भाषा को संस्कृत कर दिया गया और वह शिष्टजनों पण्डितों की भाषा बन गयी, तो उसके समानान्तर जो जन सामान्य कि बोलचाल की स्वाभाविक भाषा थी, और जिनका प्रवाह वैदिककाल से ही चला आ रहा था, वह 'प्राकृत' कही गयी इसी प्रकार 'प्राकृत' भाषा वैदिक और संस्कृत काल की जनभाषा का ही विकसित रूप है।

(ब) **प्राकृत भाषा का इतिहास व विकास** :-मध्यकालीन आर्य भाषा के प्रारम्भ में 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया गया है ऐसा अनुमान लगता है कि जनभाषा का संस्कार करके जब उसे संस्कृत संज्ञा से विभूषित किया गया तो, वह जन-भाषा जो उसकी तुलना में असंस्कृत थी, और पण्डितों में प्रचलित इस भाषा के विरुद्ध जो 'प्राकृत' या सामान्य लोगों में बोली जाती थी सहज ही प्राकृत नाम की अधिकारिणी बन बैठी। प्राकृत शब्द के दो अर्थ हैं। पहले अर्थ में 5वीं सदी ई.पू. से 1000 ई. तक की भाषा है जिसमें प्रथम प्राकृत में पालि और अभिलेखी प्राकृत है। द्वितीय प्राकृत में भारत एवं भारत के बाहर प्रयुक्त विभिन्न धार्मिक, साहित्यिक और अन्य प्राकृत हैं। तथा तृतीय प्राकृत में अपभ्रंश एवम् तथा कथित अवहट्ट आती हैं।

द्वितीय प्राकृत के लिए भी 'प्राकृत' नाम का प्रयोग होता है। यहाँ उपर्युक्त शीर्षक में प्राकृत शब्द इसी अर्थ में लिया गया है द्वितीय प्राकृत में ऊपर की अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत (पहली सदी) लिए प्राकृत (तीसरी सदी) मिश्रित बोध संस्कृत के प्राकृतांश (पहली सदी) एवं प्राकृत धम्मपद (दूसरी सदी) की प्राकृत, इन चार को बहुत लोगों ने प्रथम व द्वितीय प्राकृत के बीच में या सन्धि कालीन प्राकृत कहा है। किन्तु मेरे विचार में इन्हें भी द्वितीय में स्थान देना उचित है हाँ यह अवश्य है कि आगे हम जिन प्राकृतों पर विचार करेंगे, उनकी तुलना में यह सन्धिकालीन प्राकृते कुछ पुरानी है इसलिए उनका उल्लेख पहले किया गया है।

(स) **प्राकृतों के भेद** :-धर्म, साहित्य, भूगोल (पश्चिमोत्तरी, पूर्वी आदि) लिखने के आधार पर प्राकृतों के भेद किए जा सकते हैं, और कुछ आधारों पर भी किए गये हैं।

धार्मिक दृष्टि से लोगों ने प्राकृत के पालि, अर्धमागधी, जैन, महाराष्ट्र और जैन शौरसेनी प्रायः यह चार भेद स्वीकार किये हैं साहित्य की दृष्टि से महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची के नाम लिए गये। नाटक में प्रयोग की दृष्टि से इनमें प्रथम तीन की गणना कि गई प्राकृत के प्राचीन वैयाकरणों में वररुचि उल्लेख है इन्होंने महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी इन चार का उल्लेख किया है। हेमचन्द्र ने तीन नाम और दिये हैं आर्ष, चूलिका, पैशाची और अपभ्रंश। इनमें 'आर्ष' को ही लोगों ने 'अर्थ मागधी' कहा है। कुछ अन्य व्याकरणों तथा अन्य स्रोतों से कुछ और प्राकृतों के नाम मिलते हैं, जैसे बालीकी, शाकारी, ढक्की, शाबरी, चाण्डाली, अवन्ती, दक्षिणात्य, मूल भाषा तथा गोड़ी आदि। इनमें प्रथम पाँच मागधी के ही भौगोलिक या जातीय उपभेद थे। आभीरिका शौरसेनी की जातीय (आभीरों की) रूप चित् महाराष्ट्री से प्रभावित शौरसेनी थी दक्षिणात्य भी शौरसेनी का ही रूप है "हेमचन्द्र की चूलिका पैशाची को ही दण्डी ने 'भूत भाषा कहा है'(गलती से पैशाची का अर्थ-भूत) समझकर कुछ लोगों ने लिखा है कि हेमचन्द्र ने 'पैशाची' की ही 'चूलिका-पैशाची कहा है परन्तु वस्तुतया बात ऐसी नहीं है हेमचन्द्र ने यह दोनों नाम अलग-अलग दिये। दूसरी पहली की यह एक उपबोली हैं गौड़ी का अर्थ है 'गौड़' देश का। इसका आशय यह है कि यह मागधी का ही एक नाम है।

इसी तरह से ब्राह्मण भाषा सिन्धी की जननी है। पंजाबी और लहँदा क्षेत्र में भी उस का कोई प्राकृत रही होगी, जिसे कुछ विद्वानों ने केकय प्राकृत कहा है। टक्क या टक्की और भद्र या माद्री प्राकृत इसी की शाखाएं थी राजस्थानी और गुजराती शौरसेनी से प्रभावित तो हैं, किन्तु उनका आधार नागर अपभ्रंश हैं। इसी प्रकार पहाड़ी भाषाओं के लिए खस अपभ्रंश की परिकल्पना की गई है। इस प्रकार प्राकृतों के प्रसंग में लगभग दो दर्जन नामों का उल्लेख मिलता है किन्तु भाषा वैज्ञानिक स्तर पर पाँच ही प्रमुख भेद स्वीकार किये जा सकते हैं।

(1) शौरसेनी (2) पैशाची (3) महाराष्ट्री (4) अर्द्धमागधी (5) मागधी इन पाँचों का विवरण इस प्रकार से है।

(1) **शौरसेनी** :- यह प्राकृत मूलतः मथुरा या शूरसेन के आसपास की बोली थी इसका विकास वहाँ कि पालिकालीन स्थानीय बोली से हुआ था। मध्य देश की भाषा होने से कुछ लोग इसे संस्कृत की भाँति उस काल की परिनिष्ठित भाषा मानते हैं उस समय मध्य देश संस्कृत का केन्द्र था, इस कारण शौरसेनी प्राकृत संस्कृत से बहुत प्रभावित है इस प्रभाव के कारण शौरसेनी में अपेक्षाकृत प्राचीनता है। संस्कृत नाटकों की रूचि पात्रों की भाषा शौरसेनी ही है। 'कर्पूर-मंजरी' नाम नाटिका का गद्द इसी प्राकृत में लिखा गया है इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष के नाटकों के प्राकृत में मिलता है। दिगम्बर सम्प्रदाय के जैनो ने अपने धार्मिक ग्रन्थों में इसका अत्यधिक प्रयोग किया है। ऐसे ग्रन्थों कि भाषा 'जैन शौरसेनी' या 'दिगम्बर शौरसेनी' कहीं गई यह अपने समय की सर्वाधिक अभिजात्य भाषा थी। शौरसेनी के अन्य स्थानीय रूप अवन्ती तथा आभारी माने जाते हैं। डॉ० घोष के अनुसार प्राचीन शौरसेनी टक्क प्राकृत संस्कृत एवं शौरसेनी का मिश्रित रूप है मध्य देश की भाषा होने के कारण शौरसेनी का बड़ा आदर रहा है।

शौरसेनी प्राकृत की विशेषताएँ :-

- (1) दो स्वरों का मध्यवर्ती संस्कृत त् का द् तथा थ् का ध् हो जाता है, उदहारणार्थ-भवति-होदि, कथय-कधोहि आदि।
- (2) दो स्वरों की मध्यवती द्, ध् ध्वनियाँ अपरिवर्तित ही रहती हैं, जैसे-जलदः-जलदो तथा क्रोध-क्रोधो आदि।
- (3) "क्ष" के स्थान पर "क्ख" मिलता है, जैसे संस्कृत इक्षु-इक्खु हो जाता है।
- (4) शब्द रूपों तथा धातुओं की दृष्टि से यह संस्कृत से प्रभावित है साथ ही कुछ अंशों में महाराष्ट्री से भी प्रभावित है।
- (5) आत्मनेपद का लोप हो गया है अतः केवल परस्मैपद का ही प्रयोग मिलता है।
- (6) मध्यगत महाप्राण ख, घ, थ, ध, क, भ, को ह हो जाता है मुख-मुह, मेघ-मेह, वधू-बहू, अभिनव-अहिणव।
- (7) न् को ण हो जाता है। नाथ-णाथ, भगिनी-बहिणी।

- (8) द्विवचन का अभाव हो गया है।
- (9) मध्यगत प को व होता है। जैसे—दीप—दीव, अपि—अवि।
- (10) लिट् लड़, विधिलिङ् लकार प्रायः समाप्त हो गए हैं।
- (2) **पैशाची** :-पैशाची प्राकृत में साहित्य नहीं पाया जाता है, केवल गुणाढ्य की 'बड़कहा' का उल्लेख मिलता है। "पिशाच" जाति का वर्णन महाभारत में आता है, यह उत्तरी-पश्चिमी कश्मीर के निवासी थे। पैशाची प्राकृत को और अन्य कई नामों से भी सम्बोधित किया गया है। पैशाचिकी ग्राम्य भाषा, भूत-भाषा, भूतभाषित आदि इसके अन्य नाम हैं। वररूचि पैशाची प्राकृत को संस्कृत से विकसित मानते हैं। गिर्यसन का मत है कि यह प्राकृत दरद भाषा से प्रभावित है। "हम्मीरमर्दन" नाटक में कुछ पात्रों द्वारा पैशाची प्राकृत किया गया है मार्कण्डेय के अनुसार इसके तीन भेद हैं—कैकेय, पांचाल तथा शौरसेन। लेसेन ने भी इसके तीन भेद किए हैं—मागध, ब्राह्मण तथा पैशाचित।

पैशाची की प्रमुख विशेषताएँ :-

- (1) कहीं-कहीं 'र' के स्थान पर 'ल' तथा 'ल' के स्थान पर 'र' पाया जाता है। कुमार-कुमाल एवं रुद्र-लुदं।
- (2) 'ष' का प्रयोग नहीं मिलता इसके स्थान पर 'श' या 'स' पाया जाता है।
- (3) ण् के स्थान पर न् की प्रवृत्ति है। जैसे—गुण-गुन, गण-गन।
- (4) दो स्वरो की बीच स्पर्श व्यंजनों का लोप नहीं होता है।
- (5) आत्मनेपद एवं परस्मैपद के प्रत्यय प्रथम पुरुष एकवचन में पाये जाते हैं।
- (3) **महाराष्ट्री** :-महाराष्ट्र क्षेत्र में महाराष्ट्री प्राकृत बोली जाती थी कुछ विद्वानों के अनुसार यह प्राकृत शौरसेनी अपभ्रंश के मध्य की भाषा कहीं जा सकती है। महाराष्ट्री भाषा प्राकृत का काव्य साहित्य में अधिक प्रयोग किया गया है महाराष्ट्रीय प्राकृत को महत्वपूर्ण माना गया है। जैसा कि कहा गया है "महाराष्ट्रायां भाषायां प्रकृष्ट प्राकृतं विदुः" संस्कृत नाटकों में भी इसका बहुत प्रयोग हुआ है गीतिकाव्य, नाटक इस प्राकृत में लिखे गये हैं "गाथा सतसई (हाल रचित-गाथा सप्तशती) रावणवहा।(वृवरसेन रचित-रावणधम) कुमारपाल रचित (हेमचन्द्रा आर्यकृत) तथा जैन धर्म के साहित्य में महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग किया गया है। इसमें गद्द साहित्य भी रचा गया है श्वेताम्बर जैनियों ने इनमें अपने बहुत से धार्मिक ग्रन्थों की रचना की है इस कारण याकोबी ने इसे जैन महाराष्ट्री कहा है कुछ विद्वान इसे सम्पूर्ण भारत की भाषा मानते हैं।

महाराष्ट्री प्राकृत की विशेषताएँ :-

- (1) महाराष्ट्री प्राकृत में दो स्वरो के मध्य के अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन क, त, प, द, ग आदि का लोप हो जाता है। जैसे—गच्छति—गच्छई।
- (2) स तथा स के स्थान पर "ह" हो जाता है, जैसे—तस्य के स्थान पर ताह, अनुदिवसम्—अणुदिहं।

- (3) अपादान एक वचन में "अहि" प्रत्यय जुड़ता है। जैसे—दूरात्—दूराहि।
- (4) कर्मण्य में "य्" के स्थान पर "इज्" का प्रयोग होता है जैसे—गम्यते—गीज्जई।
- (5) दो स्वरो के मध्य आने वाले महाप्राण स्पर्श के स्थान पर "ह" हो जाता है अर्थात् ख, घ, थ, फ, ब, ध के स्थान पर केवल "ह" होता है जैसे—मुख—मुह, गाथा—गाहा, वध—बहो, कथा—कहा, क्रोध—कोहा, कवि—कर आदि।
- (6) "क्ष" "च्छ" हो जाता है जैसे—कुक्षि—कुच्छि, इक्षु—इच्छु, इत्यादि।

- (4) **अर्द्ध मागधी** :- इस प्राकृत का क्षेत्र कोसल प्रदेश था। इस प्राकृत की मागधी तथा शौरसेनी से थोड़ी-थोड़ी समानता है इस पर मागधी का प्रभाव अधिक होने से इसे अर्द्धमागधी कहा गया है। जैनियों ने इसे 'आषी' 'आर्ष' और 'आदि' भाषा कहा है। भगवान महावीर के सारे धर्मोपदेश इसी भाषा में रचे गये हैं। श्वेताम्बर जैनो के 11 अंश तथा 12 उपांग इसी भाषा में रचे गये हैं। साहित्यिक नाटकों में इसका प्रयोग किया गया है। अर्द्धमागधी का प्रयोग "प्रबोध-चन्द्रोदय" अथवा "मुद्राराक्षस" नाटक में हुआ है आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में इसे येट, "राजपुत्र" और सेठो की भाषा बताया है। कुछ विद्वानों के अनुसार अशोक के अभिलेखों की मूल भाषा यही थी जिसको स्थानीय रूपों में परिवर्तित करके लिखा गया था। इसमें जैन साहित्य की अत्यधिक रचना होने से इसे "जैन प्राकृत" भी कहते हैं।

अर्द्धमागधी की मुख्य विशेषताएँ :-

- (1) इस प्राकृत में ष एवं श् के लिए मात्र "स" पाया जाता है।
- (2) दन्त्य व्यंजन के स्थान पर मूर्धन्य हो जाता है।
- (3) दो स्वरो के बीच का व्यंजन "य" ध्वनि में बदल जाता है।
जैसे—सागर का सायर।
- (4) प्रथमा एववचन के रूप एकारान्त तथा ओकारान्त दोनों पाये जाते हैं।
- (5) कहीं—कहीं यवर्ग के लिए तवर्ग का प्रयोग किया जाता है जैसे—चिकित्सा—तेइच्छ।
- (6) गद् एवं पद् की भाषा में अन्तर मिलता है।
- (7) यहाँ र् तथा ल् दोनों ध्वनियों का प्रयोग हुआ है।
- (5) **मागधी** :- यह प्राकृत प्रदेश में बोली जाती थी, इसी से इसे मागधी नाम दिया गया है। यह वैदिक संस्कृत की प्राच्यविभाषा से उत्पन्न मानी जाती है। वररुचि के अनुसार इसका विकास शौरसेनी से हुआ है संस्कृत नाटकों के निम्न पात्रों की भाषा 'मागधी' है। यह अपने प्राचीनतम रूप में अश्वघोष की रचनाओं में पायी जाती हैं इसमें विशेष साहित्य नहीं पाया जाता। इसका अन्य नाम 'गोड़ी' भी है इसके तीन भेद मिलते हैं—शाकारी, चाण्डाली और शाबरी। मागधी से ही भोजपुरी, मैथिली, उड़िया, असमी का विकास हुआ है।

मागधी की प्रमुख विशेषताएँ :-

- (1) र ध्वनि नहीं पायी जाती। र के स्थान पर “ल” का प्रयोग किया जाता है। जैसे—राजा—लाजा।
- (2) यहाँ केवल “श्” पाया जाता है। स्, ष नहीं पाये जाते हैं। जैसे—समर—शमल, पुरुष—पुलिश।
- (3) “ज” के स्थान पर “य” हो जाता है तथा “झ” के स्थान पर “म्ह” हो जाता है जैसे—जानाति—याणादि, झटिति—महिति।
- (4) “स्थ” तथा “थे” के स्थान पर “स्त” का प्रयोग होता है उदाहरण—अध का अय्य, कार्य का कय्य, दुर्जन का दुय्यण।
- (5) मागधी के अन्य रूप चाण्डाली, ढक्की, शाबरी, बाहली की, शकारी आदि है जिसमें साहित्य नहीं पाया जाता है।
द्वितीय प्राकृत की कुछ सामान्य विशेषताएँ :-

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा द्वितीय प्राकृत के प्रमुख पाँच भेदों का जो विवेचन किया गया है, उनका अवलोकन करने से द्वितीय प्राकृत भाषा की कुछ सामान्य विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं। डॉ० कर्णसिंह ने इन सभी विशेषताओं को भाषा विज्ञान की दृष्टि से इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है।

ध्वनि सम्बन्धी :-

‘प्राकृत की ध्वनियाँ प्रायः ‘पालि’ के ही समान हैं, किन्तु उष्म ध्वनियाँ (श्, ष तथा स्) के प्रयोग में कुछ विभिन्नता है। पालि में जहाँ केवल ‘स्’ का ही प्रयोग मिलता है, वहाँ प्राकृतों के विभिन्न भेदों में से अधिकांश में केवल श् कुछ अन्य ‘स्’ और श् तथा अन्य कुछ में केवल श् और ष का प्रयोग मिलता है।

- (2) प्राकृत के विभिन्न भेदों में ‘र’ और ‘ल’ में परस्पर विपर्यय की प्रवृष्टि देखी जाती है।
- (3) प्राकृत में ‘य्’ प्रायः ‘ज्’ हो जाता है।
- (4) ‘न’ प्रायः ‘ण’ हो जाता है।
- (5) प्राकृत ध्वनियों के संबंध में सबसे विचित्र बात है, कि इनमें तथाकथित आधुनिक ग्, ध्, ज् आदि संधर्षी का प्रयोग भी मिलता है।

ध्वनि परिवर्तन संबंधी :-

- (6) पालि में प्रारम्भ हुई ध्वनि—परिवर्तन की प्रवृत्तियाँ (लोप स्वरभक्ति, समीकरण) प्राकृत काल में पूर्णतया नियमित हो गयी है।
- (7) स्वरों में मध्यवर्ती अल्पप्राण स्पर्श लुप्त हो गये है।
- (8) स्वरों के मध्यवर्ती महाप्राण स्पर्शों का स्थान “ह” ने ले लिया है।
- (9) संस्कृत विसर्ग (:) कहीं “ए” और कहीं “ओ” हो गये है।
- (10) ‘म्’ का स्थान ‘व्’ ने ले लिया है।
- (11) घोष स्पर्श, अघोष हो गये तथा अघोष स्पर्श, घोष हो गये है।

शब्द रूप संबंधी :-

- (12) प्राकृत काल में प्राय सभी व्यंजनान्त शब्द स्वरान्त हो गये।
 (13) शब्द रूपों में द्विवचन का लोप हो गया।
 (14) सादृश्य के कारण शब्दरूप हो गये।

क्रियारूप संबंधी :-

- (15) क्रियारूपों में भी द्विवचन का लोप हो गया।
 (16) आत्मनेपद नहीं रहा।
 (17) सादृश्य के कारण रूपों में कमी आ गयी।

वाक्यरचना संबंधी :-

- (18) वैदिक, संस्कृत तथा पालि भाषाएँ संयोगात्मक थीं, अर्थात् वाक्य रचना में संबंध तत्व अर्थात् से जुड़ा रहता था। उदहारण—“रमेशस्य गृहम्” (संस्कृत) किन्तु प्राकृत भाषाएँ वियोगात्मक हो गयी, अर्थात् संबंध तत्व का प्रयोग अर्थतत्व से पृथक रूप से भी होने लगा जैसे—रमेशस्य केरक घरम् (प्राकृत)।

अर्थ संबंधी :-

- (19) अनेक संस्कृत शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन हो गया। शब्दों के अर्थ अपने धातु से बहुत दूर चले तथा कहीं—कहीं नितान्त ही भिन्न हो गये।

शब्द समूह—संबंधी :-

- (20) अधिकांश शब्द तद्भव हैं, कुछ देशज भी है।

सामान्य :-

- (21) प्राकृत भाषा में बलात्मक स्वराघात था।
 (22) पालि में सरलीकरण की जो प्रवृत्ति आरम्भ हुई थी, उसका यहाँ पर्याप्त विकास हुआ है।

निष्कर्ष:- इस विवेचन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि मध्य कालीन भारतीय आर्य भाषाओं में द्वितीय प्राकृत का अत्यधिक महत्व है। इसके अन्तर्गत समस्त प्राकृत भाषाओं का समावेश हो जाता है जिस प्रकार से प्रथम प्राकृत में बौद्ध धर्म के ग्रन्थों और उपदेशों की रचना हुई है। उसी प्रकार द्वितीय प्राकृत के जैन अर्द्धमागधी, जैन शौरसेनी और महाराष्ट्री प्राकृत में जैन सम्प्रदाय में धार्मिक ग्रन्थों और महावीर स्वीमी के उपदेशों का संग्रह हुआ है। साथ ही द्वितीय प्राकृत की भाषाओं के विविध भेदों से तृतीय प्राकृत काल की अनेक बोलियों और उपभाषाओं का विकास हुआ है।

अपभ्रंश भाषाएँ

मध्यकालीन आर्य भाषा का तृतीय रूप "अपभ्रंश" के नाम से जाना जाता है। यह प्राकृत एवं वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की भाषा है प्राकृत भाषाएँ जब व्याकरण के नियमों में जकड़ गई, तो उनका साहित्यिक रूप स्थिर हो गया, किन्तु जनभाषा अपनी गति से आगे बढ़ती रही तथा साहित्यिक प्राकृत एवं जनभाषा में अन्तर हो गया। उस काल की जनभाषा में प्रयोग किए जाने वाले व्याकरण-विरुद्ध प्रयोगों को "अपभ्रंश" नाम दिया गया। अपभ्रंश का अर्थ भ्रष्ट, बिगड़ा अशुद्ध प्रयोगों से था। शनैःशनै लोकभाषा में अपभ्रंश प्रयोगों का आधिक्य हो गया। बाद में अपभ्रंश के रूप में इसे मान्यता मिल गयी। "अपभ्रंश" को कई नामों से अभिहित किया गया है, जैसे अपभ्रष्ट, अवहस, अठहटट्, आभीरोक्त, देशभाषा देशी एवं ग्रामीण भाषा आदि।

अपभ्रंश भाषा का काल :- अपभ्रंश भाषाओं का समय 500 ई. से 1000 ई. तक अथवा 600 ई. से 1200 ई. तक माना जाता है। "अपभ्रंश" शब्द का प्रयोग पंतजलि मुनि से 200 ई.पू. अपाणिनीय शब्दों के लिए किया था, क्योंकि "गौ" शब्द के अनेक अपभ्रंश शब्द गाठी, गोता, गोपोतलिका आदि का लोक भाषा में प्रचलन हो गया था। अशुद्ध या भ्रष्ट शब्दों के लिए भरत, दण्डी एवं भर्तृहरि जैसे विद्वान "अपभ्रंश" नाम का प्रयोग करते हैं। 600 ई. से भाषा के अर्थ में 'अपभ्रंश' का प्रयोग भामह के "काव्यालंकार" तथा वैयाकरण चंडके "प्राकृत लक्षणम्" में पाया जाता है। यद्यपि 'अपभ्रंश' के उदहारण 300 ई.के आसपास रचे गये भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में पाये जाते हैं। 600 ई. में हुए बल्लभीपति धरसेन ने अपने पिता गुहसेन को संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश रचना में चतुर बताया, यथा—"संस्कृत-प्राकृतापभ्रंश भाषत्रय प्रतिबद्धप्रबन्धर नानिपुणान्तः करण।" 900 ई. के आस-पास आचार्य रूहट ने अपभ्रंश का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। 1200 ई. के आसपास हेमचन्द्र ने अपभ्रंश का व्याकरण (शब्दानुशासन नाम) अपभ्रंश में 600 ई. से 1501 ई. तक काव्य रचना हुई है।

अपभ्रंश का साहित्य :- अपभ्रंश के उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं।- रङ्गकृत "करकंडचरिउ" धर्मसूरीकृत "जम्बूस्वामीरासा", पुष्पदन्तकृत, "आदिपुराण", सरहकृत "दोहाकोरा" स्वयंभूकविकृत "पउमचरिउ" धनपालकृत "भविस्वयत्रकहा" पुष्पदन्तकृत "जसहरचरिउ" तथा रामसिंहकृत "पाहुड़दोहा" आदि।

अपभ्रंश का क्षेत्र :- अपभ्रंश किस क्षेत्र में बोली जाती थी, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है अधिकांश विद्वान यह मानते हैं कि अपभ्रंश का सबसे पहले विकास पश्चिमोत्तर भारत में हुआ था। डॉ० बाबूराम सक्सेना मध्य देशीय शौरसेनी अपभ्रंश को उसे समय की परिमार्जित भाषा स्वीकार करते हैं। कीथ के मतानुसार अपभ्रंश गूजरो तथा अमीरो की भाषा थी राजशेखर का मत है कि अपभ्रंश मरुभूमि, टक्क तथा माया देश के निवासी भी बोलते थे।

अपभ्रंश के भेद :- अपभ्रंश के अनेक भेद मान गए हैं। 'विष्णु धर्मोत्तर पुराण' में अपभ्रंश के अनन्त भेद मान गए हैं। नामिसाधु ने काव्यलंकार टीका में अपभ्रंश के तीन भेद बताये हैं। तीन भेद इस प्रकार हैं—(1) नागर। (2) उपनागर। (3) ब्राह्मण।

अपभ्रंश के 27 भेदों का उल्लेख मिलता है—कर्णाट, कांच्य, गुर्जर, द्रविड़, आभीर, मध्यदेशीय, बैताल, गौड़, औढ़, वैवपश्चात्य, कौन्तल, पाण्ड्य, कलिंग्य, सैहल, प्राच्य, कैकय, मालव, टक्क, पांचाल, अवन्य, नागर बाबर, उपनागर, वैदर्भ, लाट ब्राह्मण आदि। ये भेद भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की दृष्टि से किए गये हैं। डॉ० जी.बी. तगारे ने मात्र तीन भेद माने हैं। (1) दक्षिणी (2) पश्चिमी (3) उत्तरी (4) दक्षिणी। डॉ० नामवर सिंह ने अपनी "हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग" पुस्तक में अपभ्रंश दो भेद (1) पश्चिमी (2) पूर्वी माने हैं इस प्रकार हम देखते हैं कि अपभ्रंश के विषय में अनेक मत हैं। अपभ्रंश के संबंध में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अपभ्रंश से ही आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ है, इनकी संख्या 13-14 है। यहाँ क्षेत्र विशेषता तथा जाति आदि के आधार पर अपभ्रंश के प्रमुख आठ भेदों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है, जो इस प्रकार हैं—

- (1) कैकेय अपभ्रंश व पैशाची अपभ्रंश :-पश्चिमोत्तर प्रान्त (पश्चिमी, पंजाब, पाकिस्तान) की बोली।
- (2) ब्राह्मण अपभ्रंश :-सिन्ध की बोली।
- (3) मध्य-प्रदेश (पूर्वी पंजाब, राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पश्चिमी मध्य भारत) की बोली। यह साहित्यिक अपभ्रंश भी थी जिसमें चरित्र और कथा साहित्य मिलता है। इसके नाम नागरिक व नागरिका भी हैं। पश्चिमी हिन्दी इसी अपभ्रंश से विकसित हुई।
- (4) नागर अपभ्रंश :-राजस्थान, गुजरात इसके क्षेत्र हैं। इसके बोलने वाले नागर ब्राह्मण हैं। हेमचन्द्र का अपभ्रंश का व्याकरण इसी अपभ्रंश में है।
- (5) मागधी अपभ्रंश :-बिहार, बंगाल, असम, उड़िसा की अपभ्रंश।
- (6) महाराष्ट्री अपभ्रंश :-महाराष्ट्र की बोली।
- (7) अर्धमागधी अपभ्रंश :-अवध, बुन्दलखण्ड, मध्य प्रदेश की बोली थी। पूर्वी हिन्दी का जन्म इसी से हुआ लगता है।
- (8) उपनागर अपभ्रंश :-सिन्ध और गुजरात के बीच के इलाके की (राजस्थान, दक्षिणी पंजाबी) अपभ्रंश।

(अपभ्रंश की प्रमुख विशेषताएँ)

- (1) **ध्वनि संबंधी विशेषताएँ :-**अपभ्रंश में प्रायः उन्हीं ध्वनियों का प्रयोग हुआ है जो प्राकृत में पायी जाती है "ऋ" का लिखित रूप था किन्तु स्वर की तरह उच्चारण का अभाव हो गया था। तीनों श, ष, स स्थान पर केवल 'स' का प्रयोग मिलता है, परन्तु मागधी अपभ्रंश में तीनों के स्थान पर "श" पाया जाता है।

- (2) दीर्घ अन्तिम स्वर का ह्रस्व हो जाता है, अथवा लोप हो जाता है। जैसे—संध्या—संज्ञा, प्रिया—पिय, गार्भिणी—गभिणी।
- (3) अन्तिम स्वर से पहले स्वर की मात्रा उसी प्रकार रहती है।
- (4) द्वित्व व्यंजन का प्रयोग नहीं होता है एवं प्रथम अक्षर को दीर्घ बना दिया जाता है जैसे—कृष्ण—कान्ह।
- (5) प्रारम्भ में आने वाले स्पर्श व्यंजन महाप्राण में बदल जाते हैं। यथा कीलका—खिल्लि यई।
- (6) अपभ्रंश में उकार की अधिकता पाई जाती है, यथा—पियासु, मुलु, कारणु, जागु आदि।
- (7) अपभ्रंश में व्यंजनो का विपर्यय भी प्राप्त होता है, जैसे दीर्घ शब्द का 'दीहर' होना।
- (8) अपभ्रंश भाषाओं में म का व, क्ष का 'क्ख' या 'च्छ' 'स्म' का 'म्ह' हो जाता है। यथा—कमल—कवॅल, पक्षी—पक्खी या पच्छी, अस्मै—अम्ह।
- (9) प्रारम्भ में आने वाले 'य' के स्थान पर 'ज' हो जाता है, जिसे—युगल, जुगल, पाति—जाति।
- (10) 'व' के स्थान पर 'ब' पाया जाता है—वचन—बअण, 'एण' के स्थान पर 'न्ह' हो जाता है, कृष्ण—कान्ह।
- (11) अपभ्रंश में ड, द, ल, र के स्थान पर 'ल' हो जाता है, जैसे—नवनीत लोण, प्रदीप्त—पलित।
- (12) र् एवं ऋ के समीप का दन्त्य व्यंजन मूर्धन्य हो जाता है।
- (13) 'द्' का आगम पाया जाता है। पश्यति—प्रस्सदि।
- (14) दो व्यंजनो के मिलने पर एक व्यंजन शेष रहता है एवं पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ हो जाता है, यथा—कस्य—कस्स—कासु (यहाँ स् तथा य मिलने पर एक व्यंजन 'स' शेष रह गया है एवं 'क' का स्वर दीर्घ हो गया) तस्य—तासु।
- (15) स्वरभक्ति, अपिनिहित का प्रयोग मिलता है।
- (2) पदरचना संबंधी विशेषताएँ :-**
- (16) अपभ्रंश का संस्कृत से संबंध बहुत कम हो गया।
- (17) अपभ्रंश में वियोगात्मकता अधिक हो गयी है।
- (18) अपभ्रंश में धातु तथा नाम रूपों की संख्या बहुत कम हो गयी है।
- (19) अपभ्रंश भाषाओं में कारको के नये चिह्न मिलते हैं जैसे—करण के लिए सहुँ, तण, सम्प्रदान के लिए केहि, केहि, रेसि, अपादान के लिए थिऊ होन्त, संबंध कारको के लिए केर, कर का एवं अधिकरण के लिए महे, मज्झन शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा।
- (20) नपुंसकलिंग का बहुत कम प्रयोग हुआ।
- (21) अपभ्रंश भाषा में अकारान्त पुल्लिंग प्रतिपदकों की संख्या बढ़ गई।
- (22) कारकों के रूप कम होकर केवल छः रह गए। कारक तीन वर्गों में विभाजित हो गए।
- (अ) कर्ता, कर्म सम्बोधन (ब) करण, अधिकरण (स) सम्प्रदान, अपादान एवं संबंध।

- (23) वाक्य रचना में शब्द स्थान निश्चित हो गया।
- (24) “ड” का प्रयोग होने लगा।
- (25) प्रथमा तथा द्वितीया में शब्दों का प्रयोग बिना विभक्ति के होने लगा।
- (26) तृतीय तथा सप्तमी में एकवचन में एँ तथा ईँ एवं बहुवचन में हि, हिं का प्रयोग अधिक होने लगा एक वचन में ए, इ, अहि, ऐँहि, इण, एल का भी प्रयोग होता था।
- (27) चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी के एकवचन के लिए ‘ह’, ‘हे’, ‘हु’, ‘हो’ एवम् बहुवचन के लिए हि, हिं का प्रयोग होने लगा।
- (28) अपभ्रंश में लट् के रूप लुप्त हो गए।
- (29) धातु के रूपों में लट्, लोट्, लृट् के रूप ही शेष रह गये।
- (30) लृट् में से तथा ह से युक्त शब्द प्राप्त होते हैं, यद्यपि ‘ह’ का अधिक प्रयोग हुआ है।
- (31) लङ् लकार में ‘जज’ की अधिकता है—करज्जइ।
- (32) भूतकाल के लिए “क्त” प्रत्यय अधिक प्रयुक्त होने लगा।
- (33) पूर्वकालीन क्रिया में एवि, अवि, हवि, इउ, ई, एप्पि, आदि का प्रयोग होता था, किन्तु कालान्तर में “इ” के प्रयोग की अधिकता हो गई।
- (34) क्रियार्थक संज्ञा के लिए “अण्” प्रत्यय अधिक प्रयुक्त होने लगा।

निष्कर्ष :- उक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि तृतीय प्राकृत भाषा के अन्तर्गत अपभ्रंश की गणना की जाती है। द्वितीय प्राकृत काल की जनभाषाओं में जब तत्कालीन साहित्य की रचना नहीं होने लगी, तब उस जन-भाषा से अपभ्रंश भाषा की उत्पत्ति हुई। इसे अनेक नामों से पुकारा गया है अपभ्रंश की अनेक बोलियों और भेदों का परिचय पूर्व में दिया गया है। अपभ्रंश भाषा की जो प्रमुख विशेषताएँ बताई गई हैं, वे द्वितीय प्राकृत और आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं से कुछ बातों में समन्वय रखती हैं, परन्तु संस्कृत भाषा से उसका संबंध समाप्त-सा हो गया है।

अवहट्ट भाषा का परिचय :-

‘अवहट्ट’ या “अवहट्ट” भाषा समय अपभ्रंश तथा आधुनिक भाषाओं के बीच माना जाता है। इस तरह यह अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं की संधिकालीन भाषा है साधारण रूप से अपभ्रंश भाषाओं का अन्तिम समय 1000 ई. तक माना जाता है और उसके बाद ही आधुनिक भारतीय भाषाओं का आरम्भ हुआ। इस कारण ऐसी स्थिति स्वाभाविक ही मानी जाती है कि लगभग 900 से 1100 ई. या इसके कुछ बाद तक की भाषा में अपभ्रंश एवं आधुनिक भाषाओं का बहुत अधिक मिश्रण रहा होगा। वस्तुतः अपभ्रंश से ही ‘अवहट्ट’ नाम का विकास हुआ है। इसके विकास क्रम को लेकर डॉ० भोलानाथ तिवारी की मान्यता है कि सन्धि कालीन अपभ्रंश या

अवहट्ट मोटे रूप से 900 ई. तक 1100 ई. या कुछ बाद तक है। यों साहित्य में इसका प्रयोग 14 वीं सदी तक होता रहा है। साहित्यिक अवहट्ट का मूल रूप कदाचित् परिनिष्ठत पश्चिमी अपभ्रंश था, किन्तु जो ग्रन्थ जहाँ रचा गया। उस पर वहाँ की भाषा का भी कुछ प्रभाव पड़ा था। इस तरह साहित्यिक दृष्टि से इसके पूर्वी और पश्चिमी दो ही रूप हैं, किन्तु बोलचाल में सभी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के मूल में "अवहट्ट" के एक-एक भौगोलिक रूप की कल्पना की जा सकती है।

नामकरण :-

अवहट्ट या अवहट्ट को कुछ विद्वान 'देशी' नाम देते हैं और कुछ इसे पुरानी हिन्दी या परवर्ती अपभ्रंश नाम से पुकारते हैं। डॉ० हीरालाल जैन तथा डॉ० बाबूराम सक्सेना अवहट्ट तथा देशी को एक मानते हैं। वस्तुतः देशी या देसी शब्द का प्रयोग समय-समय पर प्राकृत एवं अपभ्रंश के लिए होता रहा है और अवहट्ट काल में देशी का प्रयोग उसी के लिए हुआ है।

अवहट्ट साहित्य :-

अवहट्ट भाषा में साहित्य की रचना सीमित मात्रा में हुई। इस समय की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार मानी जाती हैं।— (1)संनेहरासक। (2)उक्ति-व्यक्ति प्रकारण (3)वर्णरत्नाकर (4)कीर्तिलता। इसके आलावा कुछ विद्वान (1)ज्ञानेश्वरी (2)राउलवेलि (3)प्राकृत पैगलम् आदि को भी अवहट्ट काल की रचना मानते हैं वस्तुतः इन रचनाओं में कुछ में अपभ्रंश का अधिक प्रभाव है तो कुछ में आधुनिक भारतीय भाषाओं से नजदीक का सम्बन्ध देखा जाता है।

अवहट्ट की प्रमुख विशेषताएँ :-डॉ० भोलानाथ तिवारी ने अवहट्ट भाषा की जिन प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया है। तदनुसार उन्हें या निदिष्ट किया जा रहा है।

- (1) अवहट्ट में वे सभी ध्वनियाँ थीं जो अपभ्रंश में थी। साथ ही उनके अतिरिक्त ऐ, औ—इन दो नई ध्वनियों का विकास हो गया। पुराने अइ का विकास 'ऐ' में तथा अउ का विकास 'औ' में हुआ। जैसे—
भुजपति—भुववंई—भुववै।
चतुःहाटक—चउहट्ट—चौहट्ट।
- (2) ह्रस्व ए, ओ, का प्रयोग कम हो गया। 'ऋ' का प्रयोग लेखन में रहा किन्तु उच्चारण में वह 'रि' रह गया। व्यंजन वे ही थे जो अपभ्रंश में थे। अन्तर केवल कुछ दृष्टियों से आया। संस्कृत के तत्सम शब्दों के आने पर 'श' ध्वनि का प्रसार और क्षेत्रों में भी कुछ हुआ ष केवल लेखन तक ही प्रायः सीमित था। उच्चारण में यह शू ही था। ल्ह, न्ह, र्ह ध्वनियाँ भी थी। जैसे—
मिल्ह, ब्राम्हण, उन्ह आदि।
- (3) स्वर-संयोगों के मिलकर एक हो जाने की सामान्य प्रकृति मिलती है। इसे स्वर-संकोचन कहते हैं। जैसे—

मयूर—मऊर—मोर ।

उन्हाकार—अन्धआर—अन्धार (अन्धेरा)

चतुर्विंशति—चउबिस—चौबीस

(4) अवहट्ट में अकारण अनुनासिकता भी मिलती है जैसे—

अश्रु—अस्सु—अंसू—ऑसू ।

(5) व्यंजन—द्वित्व के स्थल पर क्षतिपूरक दीर्धीकरण से एक व्यंजन हो जाता है। उस व्यंजन की अनुपस्थिति के कारण हुई मात्रिक क्षति की पूर्ति के लिए पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ हो जाता है। उदाहरणार्थ—

लेगिन—ठक्कुर—ठाकुर ।

कार्य—कज्ज—काज ।

कर्म—कम्म—काम ।

(6) अंत्य—ए, ओ ह्रस्व होकर इ,उ, हो गए जैसे—पर—परो—परू—क्षणे—खेणे—खणि ।

(7) अवहट्ट में म का प्रायः व मिलता है और उससे पूर्ववर्ती स्वर अनुनासिक हो जाता है। जैसे—सम—सँव ।

(8) अकारांत प्रथमा एकवचन (पुल्लिंग) का अः तथा नंपुसकलिंग—अम्, इन दोनो ही के स्थान पर उ या आ मिलता है ।

(9) पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग में भी काफी रूप समान हो गए हैं ।

(10) एह, जेह, केह जैसे नए सर्वनाम प्रयोग में आने लगे ।

(11) संयुक्त क्रिया का प्रयोग होने लगा ।

(12) परम्परा रूप से तद्भव शब्द अधिक प्रयोग में आते रहे ।

(13) हिन्दू धर्म के प्रति पुनर्जागरण के कारण तत्सम शब्द भी काफी प्रयुक्त होने लगे इसी प्रकार मुसलमानों के आने के कारण अरबी, फारसी, तुर्की के शब्द भी काफी आ गए ।

(14) अवहट्ट में देशी शब्दों की संख्या भी पर्याप्त थी। जैसे—गुंडा (गोली), ट्टचड़ (कीचड़), धाड़ा (धावा) आदि ।

निष्कर्ष :- इस विवेचन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि अवहट्ट भाषा अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय भाषाओं के संधिकाल की भाषा थी। अवहट्ट पर इन दोनों भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है इसका विकास काल 900 से 1100 ई. तक माना जाता है, परन्तु यह 1400 ई. तक आंशिक रूप से प्रचलित रही। इसमें साहित्य रचना अल्प मात्रा में मिलती है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ :-

- (1) भौगोलिक परिचय :-
- (2) वर्गीकरण और तत्संबंधी विविधता :-
- (3) भाषा वैज्ञानिक परिचय :-

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ :-आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास अपभ्रंश के भिन्न-भिन्न रूपों से हुआ है। "अवहट्ट" के उतरार्ध में आधुनिक आर्य भाषाओं की प्रवृत्तियाँ प्रमुख हो गयी तथा धीरे-धीरे आधुनिक भाषाओं का विकास हुआ। किस अपभ्रंश से किन भारतीय आधुनिक भाषाओं का विकास हुआ है, इसका वर्गीकरण विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग प्रकार से किया है। यहाँ सभी वर्गीकरणों को दृष्टि में रखते हुए अपभ्रंश भाषाओं से उत्पन्न भारतीय भाषाओं का परिचय दिया जाता है।

क्र.स.	अपभ्रंश	आधुनिक भाषाएँ तथा उपभाषाए
1.	शौरसेनी अपभ्रंश	पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती
2.	पैशाची अपभ्रंश	लहंदा (पं.पंजाबी) पंजाबी (पूर्वी पंजाबी)
3.	ब्राचड़ अपभ्रंश	सिंधी
4.	मागधी	बिहारी, बंगला, उड़िया, असमिया पूर्वी हिन्दी
5.	अर्द्ध-मागधी	पूर्वी हिन्दी
6.	महाराष्ट्री	मराठी
7.	रवस	पहाड़ी (इस पर शौरसेनी अपभ्रंश का और उसके नागररूप से विकसित पुरानी राजस्थानी का प्रभाव)

इस प्रकार पूर्व से पश्चिम तथा पश्चिमोत्तर भारत की ओर बढ़ते हुए अपभ्रंशों के स्थानों का अनुमान भी सहज ही हो जाता है। डॉ० भोलानाथ तिवारी ने शौरसेनी, मागधी, अर्द्धमागधी, महाराष्ट्री ब्राचड़ और पैशाची के रूप में वर्गीकरण करके इनसे ही आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की उत्पत्ति मानी है।

(1) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का भौगोलिक परिचय :-

वर्गीकरण और तत्संबंधी विविधता :-

(1) **पश्चिमी हिन्दी** :-यह शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित है। इसकी पाँच बोलियाँ हैं :-

(1) ब्रजभाषा :-इसका केंद्र अलीगढ़, मथुरा, आगरा तथा धोलपुर हैं। साहित्यिक दृष्टि से इसका बहुत महत्व है। कई शताब्दियों तक इसमें साहित्य की रचना होती रही। सूर, बिहारी, रत्नाकार आदि अनेक कवियों की रचनाएँ ब्रज भाषा में ही हैं। इनकी लिपि प्रायः देवनागरी ही है। इसमें ओकारान्त रूपों की बहुलता है।

- (2) खड़ी बोली :-इसका केन्द्र बिजनौर है तथा क्षेत्र रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, सहारनपुर तथा देहरादून (मैदानी भाग) तक फैला हुआ है इसके दो रूप हैं—एक जनभाषा का, जिसका परिनिष्ठत रूप बिजनौर में बोला जाता है यह मेरठ—दिल्ली के आसपास की बोली है। इसका दूसरा रूप साहित्यिक है, जिसका प्रयोग कबीर से लेकर आधुनिक काल तक के कवियों ने किया है। इसका साहित्यिक रूप जन भाषा वाले रूप पर ही आधारित माना जाता है। इसकी लिपि देवनागरी है साहित्यिक दृष्टि से भी उसके दो रूप हैं—हिन्दी तथा उर्दू। हिन्दी रूप तत्सम प्रधान है, जबकि उर्दू में अरबी फारसी के शब्दों की प्रधानता है तथा इसकी लिपि फारसी हैं। आर्य समाज के आन्दोलन तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन के कारण खड़ी बोली का बहुत अधिक प्रचार—प्रसार हुआ है स्वतन्त्र भारत में आज यह राष्ट्रभाषा, राजभाषा तथा सम्पर्क भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है।
- (3) बांगरू :-इसका प्रयोग बोली के रूप में दिल्ली, रोहतक, करनाल, हिसार, पटियाला, नाभा तथा जींद आदि में होता है। वस्तुतः यह खड़ी बोली की राजस्थानी तथा पंजाबी से प्रभावित केवल एक उपबोली है। “बाँगर” प्रदेश की होने से यह बाँगरू कही जाती है। इसमें कोई विशेष साहित्य नहीं मिलता है लोक साहित्य इसमें पर्याप्त मात्रा में मिलता है। आजकल इसकी लिपि भी देवनागरी हैं
- (4) कन्नौजी :-इसका केन्द्र मुख्यतया फरुखाबाद है, किन्तु सामान्य रूप से इसका प्रयोग पीलीभीत, शाहजहाँपुर, इटावा तथा कानपुर के आसपास तक होता है। यह ब्रजभाषा की ही एक उपबोली है। इसमें भी साहित्यिक रचनाओं का अभाव सा ही हैं।
- (5) बुन्देली :-इसका प्रयोग बुन्देलखण्ड अर्थात् झाँसी, हमीरपुर, जालौन, ग्वालियर, भोपाल, सागर, ओरछा तथा नरसिंहपुर आदि में तथा इनके आस—पास होता है। यह ब्रजभाषा से मिलती—जुलती है। इसकी लिपि देवनागरी ही है। “लाल” कवि ने बुन्देली में “छत्र—प्रकाश” ग्रन्थ की रचना की है। वैसे साहित्य का इसमें अभाव ही है। कहा जाता है कि इसकी एक उपबोली “बनाफरी” में ही प्रसिद्ध लोकगाथा “आल्हा—खण्ड” की रचना सर्वप्रथम हुई थी।
- (2) **राजस्थानी** :-यह भी शौरसेनी अपभ्रंश के नागर रूप से विकसित है। इसकी चार बोलियाँ—मेवाती, मारवाड़ी, मालवी तथा जयपुरी हैं।
- (1) मेवाती :-अलवर तथा गुड़गाँव का मध्यवर्ती क्षेत्र “मेवात” कहा गया है। मेवाती इसी क्षेत्र की बोली है। ब्रज प्रदेश के निकट होने से इस पर ब्रज भाषा का प्रभाव है।
- (2) मारवाड़ी :-यह मारवाड़ अर्थात् राजस्थान के पश्चिम भाग—जोधपुर, उदयपुर, जैसलमेर तथा बीकानेर की बोली है। इसका प्राचीन रूप डिंगल कहलाता है। यह साहित्य सम्पन्न भाषा है। नरपति नाल्ह, पृथ्वीराज आदि इसके प्रसिद्ध कवि हैं इसकी लिपि प्रमुख रूप से नागरी ही है।

- (3) मालवी :-राजस्थान के दक्षिण-पूर्व भाग में स्थित मालवा की बोली होने से यह मालवी कही जाती है। इसका प्रमुख केन्द्र इन्दौर है। इसमें भी साहित्य की रचना कम ही हुई है। इसकी प्रसिद्ध कवयित्री "चन्द्रसरवी" है।
- (4) जयपुरी :-यह राजस्थान के पूर्वी भाग अर्थात् जयपुर, कोटा और बूंदी की बोली है। इसे यह नाम योरोपियन विद्वानों ने दिया है। इसका स्थानीय नाम ढूंढाड़ी है। इसमें दादूपंथियों का साहित्य मिलता है।
- (3) **गुजराती** :-गुजरात का प्राचीन नाम 'लाट' था यहाँ की भाषा 'लाटी' थी संस्कृत में 'लाटी' शैली प्रसिद्ध है। गुजरात प्रदेश की आधुनिक भाषा गुजराती है। इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है यह पश्चिमी हिन्दी और राजस्थानी से बहुत मिलती है। इसकी लिपि पृथक् है, जो कैथी लिपि से समानता रखती है। इसकी विभाषाएँ भी कम ही हैं। इसमें तेहरवीं शताब्दी से निरन्तर साहित्य रचा जा रहा है। विनयचंद्र सूरि, राजशेखर, नरसी मेहता आदि इसके प्रमुख साहित्यकार हैं। इसकी लिपि नागरी से मिलती-जुलती होते हुए भी पृथक् है, जिसमें शिरोरेखा का प्रयोग नहीं होता है।
- (4) **लहंदा** :-यह पश्चिमी पंजाब (अब पाकिस्तान) की भाषा है इसका संबंध पैशाची अपभ्रंश से माना जाता है। लहंदा शब्द का अर्थ-सूर्यास्त, लक्षणा से "पश्चिम"। इससे ज्ञात होता है कि यह सम्पूर्ण पंजाब प्रदेश के पश्चिमी भाग की भाषा है। पश्चिमी पंजाबी, झिलाही, हिन्दकी, मुलतानी, उच्ची, जटकी आदि इसके अन्य नाम भी हैं इसकी कई बोलियाँ भी हैं। लहंदा, सिन्धी तथा कश्मीरी भाषा से पर्याप्त प्रभावित हैं। इसमें लिखित साहित्य के नाम पर केवल सिक्ख धर्म का "जनमसाखी" ग्रन्थ मिलता है शेष साहित्य केवल लोक साहित्य ही हैं। इसे गुरुमुखी में भी लिखा जाता है।
- (5) **पंजाबी** :-यह पूर्वी पंजाब की भाषा है। इसका सम्बन्ध भी पैशाची अपभ्रंश से माना जाता है किन्तु इस पर शौरसेनी अपभ्रंश का भी प्रभाव है। बोलने वालों में सिक्खों की प्रधानता के कारण इसे सिक्खी, खालसी तथा गुरुमुखी लिपी के कारण इसे कभी-कभी गुरुमुखी भी कह दिया जाता है। इसमें संस्कृत फारसी शब्द कम हैं। मुख्य रूप से यह पंजाब के किसानों की भाषा है।
- पंजाबी के दो प्रमुख रूप हैं- (क) एक परिनिष्ठित पंजाबी या माझी। (ख) दूसरा डोगरी। इनके भी कई स्थानीय उपरूप हैं। पंजाबी में साहित्य रचना 12 वी शताब्दी से मिलती है। इसके प्रथम कवि बाला फरीद शकरगंज तथा प्राचीन कवियों में गुरुनानक, गुरु अर्जुन देव आदि प्रसिद्ध हैं। वारिसशाह की लोकप्रिय रचना "हीर-राँझा" इसी में है। आधुनिक साहित्यकारों में मोहनसिंह, अमृता प्रीतम, महीपसिंह आदि प्रसिद्ध हैं। इसमें पर्याप्त साहित्य भी है। आजकल भारत में इसकी प्रमुख लिपि गुरुमुखी तथा पाकिस्तान में फारसी है।
- (6) **सिन्धी** :-यह सिन्ध प्रदेश की भाषा है इसका विकास ब्राचड़ अपभ्रंश से माना जाता है। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में (द्वितीय शताब्दी में) इसका संकेत मिलने से इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। इसका प्राचीनतम लिखित ग्रन्थ "महाभारत" है, जिसका काल 1000 ई. से भी पूर्व माना जाता है लगभग 14 वीं शताब्दी में इसमें

नियमित रूप से साहित्य लिखा जाता रहा है। इसका प्रमुख ग्रन्थ “शाहजोरिसालो” तथा प्रसिद्ध कवि अब्दुलकरीम, शाहलतीफ, सचल, सामी आदि हैं। इसकी पाँच-छः बोलियाँ हैं। सिन्धी भाषा की अन्तः स्फोटक ध्वनियाँ ज, ब आदि इसकी सबसे प्रमुख विशेषता हैं। वैसे तो सिन्धी की अपनी लिपी “लंडा” है किन्तु आजकल इसके लिए फारसी, नागरी, गुरुमुखी का भी प्रयोग होता है।

- (7) **पहाड़ी** :-पहाड़ी प्रदेश में बोली जाने के कारण यह पहाड़ी कही जाती है इसका क्षेत्र हिमालय में भद्रवाह के उत्तर-पश्चिम से नेपाल के पूर्वी भाग तक है। इसकी तीन उपबोलियाँ हैं-पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी और पूर्वी पहाड़ी। इनकी भी अनेक बोलियाँ हैं।
- (i) पश्चिमी पहाड़ी :-शिमला तथा इसके निकटवर्ती भागों में बोली जाती है।
- (ii) मध्य पहाड़ी :-इसकी दो शाखाएँ हैं- (क) कुमायूनी-नैनीताल तथा अल्मोड़ा की बोली, इसमें कुछ साहित्य भी मिलता है। (ख) गढ़वाली-गढ़वाला मसूरी और उसके निकटवर्ती भागों की बोली।
- (iii) पूर्वी पहाड़ी :-यह नेपाल तथा काठमाडूँ घाटी की भाषा है। इसमें भी साहित्य मिलता है। यह नेपाल की राजभाषा भी है। नेपाली के अतिरिक्त सभी पहाड़ी बोलियों में केवल लोकसाहित्य ही मिलता है। इन सबकी लिपि भी देवनागरी ही है।
- (8) **पूर्वी-हिन्दी** :-हिन्दी क्षेत्र के पूर्वी भाग में इसका क्षेत्र है, अंत यह पूर्वी हिन्दी कही जाती है। “ग्रियर्सन” के अनुसार इसकी तीन बोलियाँ हैं बघेली, अवधी और छत्तीसगढ़ी।
- (i) बघेली :-इसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, यह अवधी का ही दक्षिणी रूप है। कुछ विद्वान् इसे पृथक् नहीं मानते हैं।
- (ii) अवधी :-यह पूर्वी हिन्दी की महत्वपूर्ण बोली है। अवधी की भाषा होने से ही यह अवधी कही जाती है। डॉ० ग्रियर्सन ने तथा भोलानाथ तिवारी ने इसका संबंध अर्द्धमागधी से तथा डॉ० सक्सेना ने पालि से माना है। यह साहित्य सन्पन्न भाषा है। 11 वीं शताब्दी से लेकर, आंशिक रूप से वर्तमान काल तक इसमें साहित्य लिखा जाता रहा है। तुलसी के ‘रामचरित मानस’ की भाषा के साथ ही साथ यह जायसी के ‘पद्मावत’ तथा अन्य अनेक प्रेमकाव्यों की भाषा है।
लिखित साहित्य के अतिरिक्त इसमें लोकसाहित्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। इसकी मुख्य लिपि देवनागरी ही है, किन्तु कुछ अंशों में फारसी लिपि का प्रयोग भी इसमें हुआ है।
- (iii) छत्तीसगढ़ी :-छत्तीसगढ़ी में मुख्य रूप से बोली जाने के कारण ही इसका यह नाम पड़ा। इसका विकास भी अर्द्धमागधी से माना जाता है। आधुनिक काल के कुछ कवियों को छोड़कर इसका प्रयोग साहित्य में नहीं किया गया है प्राचीनकाल में ब्रज और अवधी तथा आधुनिक काल में खड़ी बोली ही यहाँ साहित्य की भाषा रही है। छत्तीसगढ़ी में लोकसाहित्य पर्याप्त मात्रा में है। इसकी लिपि प्रमुख रूप से देवनागरी ही है।

- (9) **बिहारी** :- यह हिन्दी-प्रदेश बिहार की उपभाषा हैं। ग्रियर्सन ने इसे यह नाम दिया हैं। इसके अर्न्तगत तीन बोलियाँ है। भोजपुरी, मैथिली व मगही।
- (i) **भोजपुरी** :- इसका विकास मागधी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से माना जाता है। उत्तर प्रदेश के जिलों अर्थात् बनारस, मिर्जापुर, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, देवरिया बस्ती, आजमगढ़ और बिहार प्रदेश के पाँच जिलों अर्थात् शाहबाद, पलामू, राँची, सारन और चम्पारन जिलों की भाषा रही है। इसका नाम भी शाहबाद (बिहार) में स्थित एक परगना भोजपुर के नाम पर पड़ा बताया जाता है, जो प्राचीनकाल से इस प्रदेश की राजधानी थीं। इसमें लिखित साहित्य का प्रायः अभाव ही है। आधुनिक काल में “राहुल साँकृत्यायन” तथा कुछ अन्य लोगों ने इसमें कुछ साहित्य अवश्य लिखा हैं। इसकी लिपि प्रमुख रूप से नागरी है।
- (ii) **मैथिली** :- इसका विकास मागधी अपभ्रंश के मध्य रूप से माना जाता हैं मिथिला क्षेत्र की भाषा होने से यह मैथिली कहलाती है। इसका क्षेत्र पूर्वी चम्पारन, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर, दरभंगा, पुर्निया और संथाल परगने का उत्तरी भाग हैं। इसमें अनेक उपबोलियाँ हैं, जिनमें से उत्तरी मैथिली इसका परिनिष्ठित रूप है यह साहित्यकृत दृष्टि से सम्पन्न है। विद्यापति ने अपनी रचनाएँ इसी में की है।
- (iii) **मगही** :- “मगही” शब्द मागधी शब्द से ही विकसित हुआ है। इसका क्षेत्र प्राचीन मगध तक ही हैं। इसी प्रकार पूरे गया जिले में तथा आशिक रूप से पटना, हजारीबाग, मुंगेर, पालामाऊ, भागलपुर और राँची जिलों में बोली जाती है। इसमें लिखित साहित्य का अभाव हैं, किन्तु लोकसाहित्य पर्याप्त मिलता है। गोपीचन्द्र इसके प्रसिद्ध लोककवि है।
- (10) **बंगाली** :- बंगला या बंगाली का विकास मागधी अपभ्रंश के पूर्वी रूप से लगभग 1000 ई. में हुआ है। बंगाल प्रदेश की भाषा होने के कारण बंगाली कही जाती है। इसमें संस्कृत-तत्सम शब्दों की बहुलता है। हिन्दी के भी अनेक शब्द हैं। यह साहित्य सम्पन्न भाषा है। चण्डीदास, बंकिमचन्द्र, शरत्चन्द्र, रविन्द्रनाथ ठाकुर इसके प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। इसकी अपनी पृथक् लिपि हैं, जिसका विकास प्राचीन नागरी या कुटिल लिपि से माना जाता है।
- (11) **उड़िया** :- उड़ीया प्रान्त की भाषा होने के कारण यह उड़िया कही जाती है इसका विकास मागधी अपभ्रंश के दक्षिणी रूप से माना जाता है। बीम्स के अनुसार, उड़िया भाषा का अस्तित्व बंगाली भाषा से भी पूर्व काल का है। उड़िया भाषा भी एक साहित्य-सम्पन्न भाषा हैं। लुइपा, सरलादास, बलरामदास, उपेन्द्र भंज आदि इसके प्रसिद्ध कवि हैं। वर्तमान काल में भी इसमें पर्याप्त साहित्य रचा जा रहा है। उड़िया की लिपि-ब्राह्मी की उत्तरी शैली से विकसित अपनी पृथक् लिपि हैं, इसमें सभी वर्ण वर्तुलाकार होते हैं।
- (12) **असमिया** :- इसे असमी या आसामी भी कहा जाता है। स्पष्ट ही असम या आसाम प्रदेश की भाषा होने से ही इसका यह नाम पड़ा है। इसका विकास मागधी के पूर्वोत्तर अपभ्रंश से माना जाता है। इसमें साहित्य भी रचा

गया है। असमिया का प्राचीनतम काव्य "प्रह्लादचरित्र" तेहरवीं शताब्दी के आरम्भ में रचा गया है, जिसके कवि हेम सरस्वती हैं। अन्य प्राचीन साहित्यकारों में शंकरदेव, माधवदेव, पीताम्बर, बलदेव आदि प्रसिद्ध हैं। असमिया भाषा पर तिब्बती, बर्मा, ऑस्ट्रिक तथा बंगला भाषा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसकी लिपि नागरी लिपि के पूर्वी रूप से विकसित है।

(13) **मराठी** :-यह महाराष्ट्र की भाषा है इसका नाम तथा रूप दोनों ही 'महाराष्ट्र' अपभ्रंश से विकसित हैं। इसका प्रादुर्भाव 1000 ई. से पूर्व माना जाता है। मराठी का प्राचीन काल का साहित्य जितना सम्पन्न है, उतना ही आधुनिक काल का भी है। साहित्य में मराठी का प्रयोग लगभग 12 वीं शताब्दी से माना जाता है। सन्त ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम आदि इसके प्रसिद्ध कवि हैं।

मराठी की चार बोलियाँ मुख्य हैं (1) देशी (2) कोकणी (3) बरारी (4) नागपुरी। पूना के आसपास की भाषा टकसाली मानी जाती है। मराठी में भीली और फारसी के साथ ही संस्कृत तत्सम शब्दों की संख्या पर्याप्त है साथ ही इस पर भौगोलिक निकटता के कारण द्रविड़ परिवार की भाषाओं का भी प्रभाव है। इसमें च वर्ग ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं। (1) सामान्य 'य' जैसी तथा यह इसकी बहुत बड़ी विशेषता है इसके साथ ही यह बलात्मक स्वराघात वाली भाषा है। इसकी लिपि देवनागरी है।

(3) **भाषा वैज्ञानिक परिचय** :-आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की कुछ प्रमुख विशेषताएँ

1.(ध्वनि संबंधी) 2.(ध्वनि परिवर्तन संबंधी) 3.(रूप संबंधी) 4.(रचना संबंधी) 5.(शब्द भण्डार सम्बन्धी)

(1) **ध्वनि संबंधी विशेषताएँ** :- (1) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में ध्वनियाँ प्रायः वहीं हैं, जो मध्यकालीन प्राकृतों तथा अपभ्रंशों में थी, तथापि कुछ विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं, यथा—

(क) कई नवीन स्तरों का विकास हो गया है।

(ख) 'ऋ' का उच्चारण स्वर जैसा नहीं रहा है, अतः यह केवल लिखित स्वर ही रह गया है, उच्चारित नहीं। इसका उच्चारण 'रि' हो गया है।

(ग) उष्म व्यंजन लिखित रूप में तो श्, ष्, स् हैं, किन्तु उच्चारित रूप में श् और स् ही रह गये हैं। ष् का उच्चारण भी श् ही होता है।

(घ) मूर्धन्यों में ङ् और ढ् दो नयी ध्वनियाँ विकसित हो गयी हैं।

(ङ) च वर्ण का उच्चारण एकसा न रहकर हिन्दी में च् (स्पर्श) जैसा और मराठी में च के साथ ही "त्स्" (स्पर्श-संघर्षी) जैसा भी होता है।

(ञ) ज्ञ, (ज्+त्र) का शुद्ध उच्चारण लुप्त होकर ज्यँ, ग्यँ और घँ जैसा हो रहा है।

(छ) क्, ख्, ग्, फ् (ह्रस्व ओ) आदि नवीन ध्वनियाँ विदेशी प्रभाव से आ गयी हैं।

- (ii) **ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी** :-(2) शब्दों में उपधा (अन्तिम व्यंजन से पहले आने वाला स्वर) या अन्तिम स्वर पर बलात्मक स्वराघात न होने पर—
- (क) शब्दों के अन्तिम दीर्घ स्वर प्रायः ह्रस्व हो जाते हैं।
- (ख) अन्त में आने वाला ह्रस्व “अ” प्रायः लुप्त हो जाता है, जैसे—काम्, राम्, कल्, आज आदि का उच्चारण हलन्त होता है।
- (ग) प्राकृत में समीकृत व्यंजन में से एक का लोप हो जाता है तथा द्वित्व व्यंजन से पहला स्वर क्षतिपूर्ति के रूप में दीर्घ हो जाता है, जैसे—कम्म—काम, सत्त—सात आदि।
पंजाबी, सिन्धी (आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ) आदि में कम्म, सत्त ही रहता है
- रूप-सम्बन्धी** :-(4) कारकरूप संस्कृत में 24, प्राकृत में 12, अपभ्रंश में 6 थे, किन्तु आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में केवल 1. अविकृत और 2. विकृत ये दो ही रह गये हैं। क्रिया रूप भी कम हो गए हैं। प्रायः मूल क्रियारूपों के साथ सहायक शब्दों को जोड़कर सभी काल तथा भाव प्रकट कर दिए जाते हैं।
- (iv) **रचना सम्बन्धी** :-(5) संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि भाषाएँ योगात्मक थीं, अपभ्रंश कुछ अयोगात्मक हुई, किन्तु आधुनिक भारतीय आर्य भाषा पूर्णतया अयोगात्मक हो गयी हैं। नामरूपों में के साथ ‘ने’ को ‘स’ ‘में’ आदि परसर्गों का और क्रियारूपों में कृदन्त एवं सहायक क्रिया के साथ संयुक्त क्रिया का प्रयोग होता है। (6) आधुनिक आर्य भाषाओं में वचन—एकवचन तथा बहुवचन दो ही हैं। (7) हिन्दी, राजस्थानी, पंजाबी तथा सन्धी में दो लिंग हैं। गुजराती, मराठी आदि कुछ में अभी तक भी तीन लिंग हैं। वैसे आधुनिक भारतीय आर्य-भाषा की प्रवृत्ति लिंगभेद समाप्ति की ओर ही हैं।
- (v) **शब्द-भण्डार सम्बन्धी** :-(8) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में से प्रत्येक में ही विदेशी शब्दों की संख्या पर्याप्त है। विदेशी शब्द तुर्की, अरबी, फारसी, पुर्तगाली तथा अंग्रेजी से लिए गए हैं। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में इनका अभाव था। (9) पहले की अपेक्षा अनेक नये अनुकरणात्मक शब्द भी विकसित होते गये हैं (10) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में बलात्मक स्वराघात मुख्य हो गया है। वाक्यों में संगीतात्मक स्वर प्रयोग भी मिलता है। (11) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ सरलता की ओर बढ़ रही हैं। (12) क्रिया में कर्मवाच्य के रूप लुप्त हो गये हैं और लकारों का प्रयोग घट गया है। वर्तमान काल और भूतकाल के लिए क्रमशः शत् और क्त, प्रत्ययान्त रूपों का प्रयोग होने लगा है। इस कारण तत्सम शब्दों का प्रयोग बदला जा रहा है।
- निष्कर्ष** :—इस विवेचन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास अलग-अलग अपभ्रंशों से हुआ है। इनके वर्गीकरण को लेकर विद्वानों में कुछ मतभेद हैं। यहाँ आधुनिक

भारतीय भाषाओं के रूप में प्रमुख तरह भेदों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है, साथ ही इनकी उपबोलियों और उपभेदों का उल्लेख कर साहित्यिक महत्व बताया गया है।

(भाषा-विज्ञान)

(हिन्दी भाषा संरचना)

(1) **हिन्दी शब्द स्रोत** :-भाषा में प्रयुक्त होने वाले समस्त शब्दों को उस भाषा का शब्द-समूह कहते हैं। भाषा में संरचना की दृष्टि से शब्द उसकी सबसे छोटी इकाई है संस्कृत व्याकरण में शब्द समूहों का चार प्रकार से वर्गीकरण किया गया है। परन्तु रचना के आधार पर तीन ही भेद माने गये हैं—रूढ़, यौगिक, योगरूढ़। जिन शब्दों को अर्थ में कोई व्युत्पत्ति नहीं होती है, वे रूढ़ कहलाते हैं। दो शब्दों या लघुतम भाषिक इकाइयों के योग से बनने वाले शब्द यौगिक कहलाते हैं। इन दोनों के मिश्रित रूप को योगरूढ़ कहते हैं। प्रत्येक भाषा का अपना इतिहास और परिवेश होता है। इसी आधार पर भाषा के शब्द समूह में अन्य अनेक भाषाओं के शब्द स्वतः समाविष्ट हो जाते हैं हिन्दी भी विश्व की महत्वपूर्ण भाषा है। अतः इसके शब्द समूह में भी अनेक जीवित और मृत भाषाओं के शब्दों का संग्रह दिखाई देता है। हिन्दी शब्द समूह के मुख्यतः दो वर्ग हैं—

1. भारतीय भाषाओं के शब्द —

2. विदेशी भाषाओं के शब्द —

हिन्दी में भारतीय भाषाओं के जो शब्द समाविष्ट हैं, उन्हें भी दो वर्गों में रखा जा सकता है।

(1) भारतीय आर्य भाषाओं के शब्द। (2) भारतीय अनार्य-भाषाओं के शब्द।

भारतीय आर्य भाषाओं के शब्द :-हिन्दी के शब्द-भण्डार में इनकी संख्या विपुल है। इन्हें तत्सम, अर्द्धतत्सम, तत्माभास, तद्भव, अर्द्धतद्भव, देशज संकट और ध्वनि आदि वर्गों में रखा जा सकता है।

(1) तत्सम :-संस्कृत से हिन्दी में शुद्ध रूप से आए शब्द तत्सम कहे जाते हैं। हिन्दी में देव, राजा, अग्नि, फल, पुत्र आदि शब्द तत्सम वर्ग के हैं, किन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि तत्सम कहे जाने वाले सभी शब्द संस्कृत के नहीं हैं गौ, लौह, परशु, कूप, कदली, पिनाक, रात्रि आदि अनेक शब्द संस्कृत में दूसरी भाषाओं से आये हैं। कुछ को संस्कृत ने शुद्ध रूप में और कुछ को परिवर्तित रूप में ग्रहण किया है। प्रयोग के आधार पर उन्हें संस्कृत का मान लिया गया है।

हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले तत्सम शब्द संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण और अव्यय हैं। संज्ञा शब्द तीन प्रकार के हैं—

(1) संस्कृत प्रतिपादिक, जैसे—राम, मित्र, पुस्तक, देव, बालक, कवि, हरि, कपि, सुधी, मानु, गुरु, धेनी, वधू, भू, स्वयंभू आदि।

(2) संस्कृत प्रथमा एकवचन जैसे—सखा, दाता, पिता, दुहिता, आत्मा, युवा, भगवान, धनवान आदि।

(3) उभय प्रबोधक, जैसे—वारि, दीर्घ, मधु, विद्या, बाला, निशा, नदी, कन्या, रमा, जगत्, सुहृद् आदि।

हिन्दी में सर्वनाम भी बहुत प्रयुक्त हैं। विशेषण केवल प्रतिपादिक रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे—तीव्र, नूतन, पुरातन, चिरन्तर, नवीन, खेत सुन्दर आदि। तत्सम शब्दों के आधार पर हिन्दी में “स्वीकारना” आदि कुछ क्रियाएँ भी बनी हैं।

संज्ञाओं के बाद हिन्दी में तत्सम रूप में प्रयुक्त हो रहे अव्यय शब्दों की संख्या विपुल है अव्यय तीन प्रकार के हैं—

- (1) संस्कृत के समान, जैसे—पृथक्, धिक्, सहसा आदि। संस्कृत और हिन्दी दोनों में यह इसी रूप में आते हैं।
- (2) संस्कृत के कई रूपों में से एक जैसे—शनै—शनैः, प्रातः आदि। संस्कृत में यह तीन रूपों—शनैः, शनैस्, प्रातः प्रातर, प्रातस्— में प्रयुक्त होते हैं, किन्तु हिन्दी में इनके केवल उक्त उदाहृत रूप ही प्रयुक्त होते हैं।
- (3) संस्कृत का मूल रूप, जैसे नित्स आदि। यह संस्कृत में नित्यम् रूप में भी प्रयुक्त होता है।

स्रोतों के आधार पर हिन्दी के तत्सम शब्दों को चार श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—

- (1) प्राकृतों से होकर आने वाले शब्द।
 - (2) हिन्दी के विभिन्न कालों में संस्कृत से सीधे लिये गये शब्द,
 - (3) संस्कृत के व्याकरण नियम के आधार पर हिन्दी काल में निर्मित शब्द
 - (4) अन्य प्रादेशिक आर्य भाषाओं से आये हुए शब्द।
- (1) प्राकृतों से होकर आने वाले शब्द :—ये शब्द पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से होकर हिन्दी में आये हैं। उदाहरण के लिए अचल, अध, काल, कुसुम, जानु, दण्ड, दम आदि। ये दो प्रकार के हैं—पहले वे जो संस्कृत
 - (2) हिन्दी के विभिन्न कालों में संस्कृत से सीधे लिये गये शब्द :—संस्कृत से लिए गये शब्दों की संख्या पहले प्रकार के शब्दों से काफी बड़ी है। ये हिन्दी के भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल में संस्कृत से सीधे लिये गये हैं। उदाहरण के लिए कर्म, विद्या, ज्ञान, क्षेत्र, कृष्ण, पुस्तक, मार्ग, मत्स्य, मध, मेघ, पुष्प, मृग, मधुर, कुशल आदि।
 - (3) संस्कृत के व्याकरण नियम के आधार पर हिन्दी काल में निर्मित शब्दों की संख्या :—लाखों में है। ये शब्द प्रायः पारिभाषित शब्दों की कमी की पूर्ति करने के लिए बनाए गये हैं। उदाहरण के लिए जलवायु, सम्पादकीय, प्राध्यापक, रेखाचित्र, प्रभाग, वाक्य—विश्लेषण, निदेशक आदि।
 - (4) अन्य प्रादेशिक आर्य भाषाओं से आए हुए शब्द :—अन्य प्रादेशिक आर्य भाषाओं से आए हुए शब्दों की संख्या बहुत नहीं है प्रादेशिक आर्य भाषाओं के शब्दों में सर्वाधिक संख्या बंगला भाषा के शब्दों की है अन्य प्रादेशिक आर्य भाषाओं के शब्द प्रायः नहीं के बराबर है। उदाहरण के लिए वक्रता उपन्यास, गल्प, कविराज, सन्देश, अभिभावक,

निर्भर उर्मिल आदि बंगला और वाङ्मय, प्रगति आदि मराठी के शब्द। इनमें से कुछ शब्द संस्कृत में भी प्रयुक्त होते हैं। कुछ शब्द संस्कृत के आधार बना लिए गए हैं।

2. **अर्द्धतत्सम** :-तत्सम और तद्भव के मध्यवर्ती शब्दों के लिए यह नाम आधुनिक भाषा पण्डितों –ग्रियर्सन और चटर्जी आदि द्वारा दिया गया है। यह शब्द प्राकृत अपभ्रंश भाषा काल में अथवा आधुनिक आर्य भाषा काल में संस्कृत से प्रत्यक्ष रीति से लिए गये है, किन्तु इनमें परिवर्तन की प्रवृत्ति तद्भवों जैसी नहीं है, अपितु कुछ और प्रकार से अल्प परिवर्तन हुए है। अतः यह एक और तो तद्भवों से सर्वथा भिन्न हैं तथा दूसरी और उनकी तुलना में तत्समो से कुछ ही हटे हैं। अतः उनसे भी पृथक हैं। जैसे–किशुन, लगुन, साधु, आखर आदि। ये हिन्दी की बोली में अधिक प्रयुक्त हुए हैं तद्भवीकरण की पूर्वापर प्रक्रिया के आधार पर डॉ० भोलानाथ तिवारी ने तद्भव शब्दों को 'पूर्ववर्ती तद्भव' और 'अर्द्धतत्सम' शब्दों को 'परिवर्ती तद्भव' कहा है।
3. **तत्समाभास** :-ऐसे शब्द जो देखरने में तत्सम जैसे प्रतीत हों किन्तु तत्सम न हों, उन्हें तत्समाभास की संज्ञा दी गई है। "तत्समाभास" शब्दों की भी दो कोटियाँ है।
 - (1) पहला वर्ग उन शब्दों का है जो संस्कृत के प्रथम एकवचन के रूपों में से विसर्ग (:) हटाकर बने हैं। जैसे–चन्द्रमा, पथ, नभ, उर, मन, वय, रज, वक्ष, तम, यश, शिर, अप्सरा आदि।
 - (2) दूसरा वर्ग उन शब्दों का है जो अशिला अथवा प्रसाद आदि अन्य कारणों से परिवर्तित होकर बने हैं, अतः अब तत्सम नहीं रह गये हैं।
जैसे–राष्ट्रीय, उपर्युक्त, प्रण, संगृहीत, क्षत्राणी, दक्षिणात्य आदि। डॉ० भोलानाथ तिवारी ने इन्हें भी परवर्ती तद्भव–अर्द्धतत्सम वर्ग में ही मानते हैं। ऐसे शब्दों को 'तत्समाभास' मानने में भी कोई आपत्ति नहीं है।
4. **तद्भव** :-संस्कृत से प्रादुर्भूत अथवा विकसित शब्दों को तद्भव कहते हैं। ये शब्द प्राकृत–अपभ्रंश से होते हुए हिन्दी में आये हैं। आचार्यों ने इन्हे "विभ्रष्ट", "तत्ज", "संस्कृत योनि", "अपभ्रष्ट" या अपभ्रंश भी कहा है। हिन्दी में काम, धाम, दूध, नाच, साँप, आग, कपड़ा, बच्चा आदि इसके उदाहरण हैं। हिन्दी शब्द समूह में इनकी संख्या सबसे अधिक है भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी इनकी संख्या सबसे अधिक है इन्हें हिन्दी के अस्थिपंजर का भेरुदण्ड समझना चाहिए।
5. **अर्द्धतद्भव** :-जो शब्द न तो तत्सम होते हैं, न दत्भवत ओर न देशज होते है, अपितु किसी आधार पर बनकर प्रचलित हो जाते हैं, वे अर्द्धतद्भव कहलाते है जैसे–संस्कृत "मातृषसा" में कई प्रत्यय के योग से बने "मौसी" शब्द के आधार पर निष्पन्न पुल्लिंग शब्द "मौसा"। यह शब्द तत्सम् तद्भव, देशज में से किसी भी वर्ग में नहीं आता, किन्तु यह प्रचलित है। हिन्दी के धोता, पोथा, हत्था आदि शब्दों को भी इसी कोटि में गिना जाना चाहिए।
6. **देशज** :-हिन्दी में प्रयुक्त हो रहे ऐसे शब्द जिनकी व्युत्पत्ति हमें ज्ञात नहीं है और जो देशी बोलियों में भी पाए जाते हैं, "देशज" कहलाते है। जैसे–तेदुंआ, धोंटू, ठेस, धब्बा, थोथा, घपला, जूता, चिड़िया, लोटा, डिबिया, गोंद

आदि। डॉ० भोलानाथ तिवारी ने इन्हें “अज्ञात व्युत्पत्तिक” कहना ज्यादा वैज्ञानिक माना है। यथार्थतः शुद्ध देशज शब्द किसी भी भाषा में बहुत ही कम होते हैं।

7. **संकर** :-इन्हें “द्विज” या “वर्ण संकर” भी कहते हैं। इसका निर्माण दो भिन्न भाषाओं के शब्दों के योग से होता है। जैसे—रेल यात्रा (अं+सं.) डाकखाना (अं.+फा.) राजमहल (हि.+अ.) रेलगाड़ी (अं.+हि) आदि।
8. **ध्वनि या अनुकरणात्मक** :-हिन्दी के यह शब्द किसी-न-किसी पदार्थ की वास्तविक या कल्पित ध्वनि के अनुकरण पर बनाए गये हैं। ध्वन्यानुकरण की प्रवृत्ति के आधार पर ही इन्हें यह नाम दिया गया है। जैसे—चटपट, खटपट, मर्मर, कलकल, धलबल, कलमल, हलमल, लकलक, भड़भड़, तड़तड़, भिभियाना, चिचियाना, हिनहिनाना, गुनगुनाना आदि।
9. **प्रतिध्वन्यात्मक** :-इनमें मूल शब्दों के प्रकार, सादृश्य अथवा सम्बन्ध का बोध कराने के लिए उनकी आंशिक आवृत्ति करा दी जाती है। जैसे—रोटी —ओटी, लोटा—ओटा, घोड़ा—ओड़ा आदि। इसमें ओटी, ओटा, ओड़ा आदि प्रतिध्वन्यात्मक शब्द हैं। इन शब्दों का प्रयोग प्रायः लोकभाषाओं में होता है।

भारतीय अनार्य भाषाओं के शब्द

द्राविड़ परिवार की भारतीय भाषाएँ अनार्य मानी जाती हैं। द्राविड़ परिवार की प्रमुख भाषाएँ हैं—तमिल, तेलगू, मलयालम और कन्नड़। मुण्डा दक्षिण भारत के वासियों की भाषा है। यथापि अनार्य भाषाओं के शब्दों की संख्या हिन्दी में बहुत थोड़ी है, फिर भी पिल्ला (तमिल), फोड़ी (मुण्डा), साबू (मलयालम) और डाँगर (संथाली) आदि शब्द हिन्दी में बहुत प्रचलित हैं।

विदेशी भाषाओं के शब्द

हिन्दी प्रदेश का संबंध विगत अनेक शताब्दियों से ईरानी, चीनी, मिश्री, तुर्की, अरबी, फारसी, पश्तो, आदि एशियाई और बाद में पुर्तगाली, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मन, इटैलियन, रूसी आदि योरोपीय भाषाओं से रहा है। अतः उक्त विदेशी भाषाओं के शब्द हिन्दी के भण्डार में सम्मिलित होते रहे हैं। स्वदेशी भाषाओं के शब्दों की संख्या भी शब्दों की संख्या भी हिन्दी में विपुल हैं। विदेशी भाषाओं के शब्दों के मुख्यतः तीन वर्ग हैं।

- (i) एशियाई भाषाओं के शब्द (ii) योरोपीय भाषाओं के शब्द (iii) महाद्वीपीय शब्द।
हिन्दी शब्द-समूह में पहले और दूसरे प्रकार के शब्द संख्या में अधिक हैं। भारत के एशिया और यूरोप के देशों के साथ सांस्कृतिक, राजनीतिक और वैज्ञानिक आदान-प्रदान के कारण ही ऐसा हुआ है।
- (2) **एशियाई भाषाओं के शब्द** :-एशियाई भाषाओं के शब्द संख्या में अधिक हैं। व हिन्दी में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त होते हैं। लगभग 11वीं शताब्दी ई. से ही इसका प्रचलन आरम्भ हो गया था। फारसी, मुगल, पठान शासकों की भाषा रही है। अतः एशियाई भाषा के शब्दों में फारसी शब्दों की संख्या सबसे अधिक है। फारसी के शब्द हिन्दी में प्रत्यक्ष रीति से आये हैं। एशियाई भाषा के शब्दों के कुछ उदहारण इस प्रकार से हैं।

- (अ) ईरानी :-क्षत्रप, मिहिर, गंज, तीर, तष्बुल, तुत आदि ईरानी भाषाओं के शब्द हैं।
- (ब) पश्तो :-पठान, अरेटन, अल्लमगल्लम, मटरगश्ती, गुण्डा, खर्टाटा, तहस-तहस, टसमरू, जमालघोटा, अखरोट, खचड़ा, पटाखा, डेरा, गटागत, गुटरगूँ, कुड़बुड़ाना, नगाड़ा, गुलगपाड़ा, कलूटा, हमजोली, लच्चा, अटकल, भड़ास आदि।
- (स) तुर्की :-बहादुर, उजबक, कलगी, कैची, काबू, फूली, खॉ, खातुन, गलीचा, चिक, तमगा, चमंचा, तोप, दरोगा, बख्शी, बेगम, बीबी, चम्मच, मुचलका, लाश, सौगात, सराय, बाबा, चेचक, तोशक, बारूद, नागा, कुर्ता, खच्चर, चौंगा आदि।
- (द) अरबी-फारसी के शब्द :-आफत, अदालत, रोज, मजहब, दीन, कुरान, खुदा, पैगम्बर, सरकार, तहसीलदार, चपरासी, माल, मुंशी, खंजाची, हाकिम, सिपाही, फौज, जमादार, पजामा, कमीज, मौजा, मुहल्ला, परगना, देहात, शहर, जिला, अंजरि, बदाम, किशमिश, मुनक्का, सब्जी, बरफी, जलेबी, सुफली, साबुन, सुमी, आईना, दरजी, जुलहा, मेहराठ, हाकिम, बुखार, जुखाम, मर्ज, ईमानदार, दिलेर, आखिर, बेशक, जरूर, हमेशा, खामखा, लेकिन आदि।
- (इ) चीनी व जापानी :-फीचड़, सिंदूर, टसर, लीची व जापानी शब्द रिक्शा, जुलूस आदि।
- (2) **यूरोपीय भाषाओं के शब्द** :-यूरोपीय भाषाओं के शब्दों में अंग्रेजी भाषा के शब्दों की संख्या अधिक है। फारसी की भाँति अंग्रेजी भी शासकों की भाषा रही है। इसलिए अंग्रेजी के शब्दों की हिन्दी शब्द संरचना में प्रचुरता है। फारसी की ही भाँति अंग्रेजी के शब्द भी हिन्दी में प्रत्यक्ष रीति से आये हैं। अन्य यूरोपीय भाषाओं के शब्द परोक्ष रीति से अर्थात् अंग्रेजी के माध्यम से हिन्दी शब्द समूह में सम्मिलित हुए हैं। यूरोपीय भाषाओं के शब्दों के कुछ नमूने इस प्रकार हैं।
- (अ) पुर्तगाली :-अन्नास, अलकतरा, आलमारी, आलपिन, स्त्री, इस्पात, कन्सतर, कप्तान, कमरा, काजू, काफी, गमला, गिरजा, गोभी, गोदाम, चाबी, चाय, तम्बाकू, पीला, तौलिया, पपीता, पयत, बाल्टी, बिस्कुट, बोटल, मिश्री, लबादा, संतरा, छाया आदि।
- (ब) फ्रांसीसी :-एड्बोकेट, कूपन, कप, जज, कालर, टेबल, पिकनिक, डीलक्स, मास्टर, मशीन, मेम, लैम्प आदि।
- (स) अंग्रेजी :-अस्पताल, अंडरवियर, आइसक्रीम, आपरेशन, इंजन, इंजेक्सन, कोट, कम्पाउन्डर, गजट, टाइप, पोस्टकार्ड, रेडियो, पाउडर, मनीआर्डर, लेडी, लिपस्टिक आदि।
- (द) यूनानी :-दाम, दमड़ी, सुरंग, कस्तुरी आदि।
- (इ) लैटिन :-रोमन, दीनार आदि।

- (य) डच, स्पेनी, जर्मन, इटैलियन, रूसी, भाषाओं के शब्द :—(डच) तुरूप, बम (स्पेनी) कार्क, सिगार, सिगरेट (जर्मन) वैगन, ट्रैन, सेमिनार, डैक आदि (इटैलियन) लाटरी, राकेट, वायिलन, पियानो, कार्टून, मलेरिया, स्टूडियो, सानेट आदि। (रूसी) जार, रूबल, टुण्डा, टैगा, स्पुतनिक, मेट्रो आदि।
- (3) **अन्य महाद्वीपीय शब्द** :—अन्य महाद्विपों के शब्द भी अंग्रेजी के माध्यम से ही हिन्दी में आए हैं। इधर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत का विश्व के विविध देशों से सम्पर्क बढ़ा है। अतः अन्य महाद्वीपों के शब्द भी हिन्दी में आए हैं तथा उनके और अधिक आने की सम्भावना भी है। अन्य महाद्वीपों के आए हुए शब्दों में अफ्रीका और आस्ट्रेलिया महाद्वीप के शब्द उल्लेखनीय हैं। कुछ शब्द उदहारण स्वरूप दिये जा रहे हैं।
- (अ) अफ्रीकी व आस्ट्रेलियाई शब्द :—चिम्पैन्जी, ज़ेबा, कंगारू आदि।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हिन्दी का शब्द भण्डार काफी समृद्ध है। हिन्दी के शब्द भण्डार में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि हो रही है। अन्य भाषाओं के शब्दों को हजम कर उन्हें अपना बना लेने की प्रवृत्ति हिन्दी में निराली है। यह इसकी रचनात्मक प्रवृत्ति का परिचायक है। विद्वानों का अनुमान है कि हिन्दी के शब्द भण्डार में अब तब दस हजार से भी अधिक विदेशी भाषाओं के शब्द समाहित हो चुके हैं। जिनमें से अरबी—फारसी के लगभग छः हजार अंग्रेजी के तीन हजार, पश्तो के सौ से अधिक, पुर्तगाली के लगभग एक सौ और तुर्की के लगभग 70 शब्द हैं। अन्य विदेशी भाषाओं के शब्दों की संख्या अत्यल्प है। ज्ञान, विज्ञान और तकनीकी प्रगति के कारण हिन्दी शब्द—समूह में नित्य नये—नये शब्द प्रविष्ट हो रहे हैं और हिन्दी एक विकसित भाषा बनकर ज्ञान के सभी क्षेत्रों में अपनी अद्भुत रचना—शक्ति का परिचय दे रही है।

निष्कर्ष :— हिन्दी का शब्द—भण्डार समृद्ध है। इसने अधिकांश शब्दों को परम्परागत रूप से ग्रहण किया है। समय—समय पर इसने अन्य सजातीय भाषाओं से भी शब्द लिए हैं। आधुनिक विज्ञान तथा तकनीकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इसने प्रचुर मात्रा में नए पारिभाषिक शब्दों को निर्मित भी किया है। स्वतन्त्रता के बाद उसके शब्द समूह में एशिया और यूरोप महाद्वीपों की भाषाओं के शब्दों के अतिरिक्त अफ्रीका और आस्ट्रेलिया महाद्वीप की भाषाओं के शब्द भी आए हैं। उनके और अधिक आने की सम्भावना है, जिससे उसके शब्द भण्डार का विस्तार ही होगा।

उपसर्ग एवं प्रत्यय

उपसर्ग :—‘उपसर्ग’ शब्द उप+ऋज्+धज् के योग से बना है। इसमें ‘उप’ उपसर्ग ज् धातु और धज् धातु और धज् प्रत्यय है तथा इसका मूल अर्थ ‘समीप छोड़ा हुआ’ ‘पास रखा हुआ’ अथवा समीप लाकर सृजन करने वाला है। ‘ऐतेरेय’ ब्राह्मण में शब्द ‘योग’6 अथवा जोड़ आदि अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। बाद में यह किसी धातु या शब्द के आरम्भ में संलग्न की गई ‘व्याकरणिक इकाई’ का वाचक बन गया। ‘ऋग्वेद—प्रतिशाखा’ को ‘उपसर्ग युक्त’ संज्ञा कहा गया है। ‘अष्टाध्यायी’ में क्रिया के साथ जुड़ने वाले ‘प्र’ आदि निपात उपसर्ग माने

गये है। “वार्तिक” में उपसर्ग को “क्रिया विशेषक” अर्थात् “धातु के अर्थ में विशिष्टता ला देने वाला” माना गया है।

वस्तुतः “उपसर्ग” उस वर्ण अथवा समुदाय को कहते हैं जो स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त नहीं होता, किन्तु किसी शब्द के पूर्व लगकर अवश्य ही उसमें कुछ अर्थ संबंधी विशिष्टता ला देता है। योरपीय परिवार में उपसर्गों का इतिहास काफी प्राचीन काल तक जाता है। पहले यह स्वतन्त्र शब्द थे तथा इनका अपना अर्थ था। बाद में इनकी यह स्वतन्त्रता पूर्णतः समाप्त हो गई और यह केवल मूल शब्द से संबंध होकर आने लगे संस्कृत में प्र, पस, अप, सम्, अजु, अत, जिस, निर, वि, आडू, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप आदि 22 उपसर्ग माने जाते हैं।

उपसर्ग के भेद :- उपसर्गों के मुख्यतः दो वर्ग हैं स्वदेशी और विदेशी। स्वदेशी उपसर्ग सजातीय अथवा परम्परागत और विदेशी उपसर्ग विजातीय अथवा आगत भी कहे जाते हैं।

स्वदेशी उपसर्ग :- स्वदेशी उपसर्गों के दो वर्ग हैं तत्सम और तद्भाव। तत्सम की तुलना में तद्भव उपसर्ग अधिक ऐतिहासिक महत्व के हैं, क्योंकि इनमें विकासात्मक परिवर्तन हुए हैं। परिनिष्ठित हिन्दी में सभी तत्सम उपसर्ग संस्कृत से ग्रहण किए गये हैं। ये प्रादि उपसर्ग कहलाते हैं।

तत्सम उपसर्ग :-

1. अ :- (नहीं, अभाव, छीजता, शून्यता): अपमान, अपहरण, अपशब्द। यह "न" (नत्र) गति का रूपान्तर है। इसका प्रयोग अभाव, शून्यता, अथवा निषेय अर्थ में किया जाता है। हिन्दी में यह संज्ञा, जैसे असमय, अबोध अड़िग, अचल आदि के साथ जोड़ा जात है।
2. अज् :- (अभाव, हीनता, शून्यता): अजायास, अनन्त, अनदेखा, अनछुआ, अनपढ़। संस्कृत में यह केवल स्तर से प्रारम्भ होने वाले शब्दों में लगता था किन्तु हिन्दी में ऐसी बात नहीं है।
3. अजु :- (पीछे, समान): अनुरूप, अनुशासन, अनुवाद। यह संज्ञा से संज्ञा जैसे अनुशासन आदि और संज्ञा से विशेषण आदि बनाने में सहायक है।
4. अधि :- (अधिक) अधिसंख्य, अधिपति।
5. अप :- (बुरा) अपमान, अपहरण, अपशब्द।
6. अभि :- (ओर, अतिरिक्त) अभिमान, अभियोग, अभिमत, अभिनव।
7. अव :- (बुरा, हीन, नीचे, दूर) अष्णुण, अवनत।
8. आ :- (तक, समेत, और, कम) आगमन, आजन्म, आकर्षण आजानु।
9. उत् :- (ऊपर, ऊँचा) उत्फुल्ल, उत्पीड़न।
10. उप :- (सहायक, गौण, छोटा, निकट) उपबोली, उपभाषा, उपराष्ट्रपति, उपकुलपति, उपमंत्री।
11. कु (बुरा) : कुरूप, कुयोग, कुपथ, कुदृष्टि, कुदिन।
12. दुर (बुरा, कठिन) दुराचार, दुर्बल, दुर्गुण, दुर्जन, दुर्दिन, दुर्घटना।
13. लि :- (नीचे, समूह, आदेश, समीप, कुशलता, आदि) निकुंज, निगूद, निदर्शन, निबंध, नियुक्त, नियुक्ति।
14. निर (नहीं, रहित, दूर, बाहर) निर्बल, निरपराध, निर्मल, निर्भय, निर्दोष।
15. वि (अभाव, दूसरा, अधिक, विशेष) : विज्ञान, विवाद, विदेश, विस्मरण।
16. स (सहित) : सफल, सजीव, सरस, सनाथ, सानंद, सकुशल।
17. सु (अच्छा, सरल, ज्यादा): सुशिक्षित, सुडौल, सुगंध, सुयोग्य, सुगम, अप्रसिद्ध।

तद्भव उपसर्ग :- यह मूलतः स. (उपसर्ग, गतत, अव्यय) से विकसित हुए हैं :-

1. उ :- सं., उद् > प्रा० उ > हि० उ। मूल अर्थ ऊपर, ऊँचा आदि: उनींदा, उथला, उभरना, उतरना।
2. उज :- सं. एफोन > पालि एकून > प्रा० ऊन (सं. में भी ऊन है) > हि० उन अर्थ है एक नहीं या एक कम यह केवल संख्यात्मक शब्दों में ही आता है, उन्नीस, उन्तीस, उन्तालीस, उनचास, उनसठ, उनहतर, उन्यासी।
3. औ :- सं. अत > प्रा० अब, ओ > हि० औ। अर्थ है "हीन", नीचे, "दूर" आदि: औगुन, औघट, औथर, औधड़।

4. क :- सं. कु > प्रा० कु > हि० > क। यह केवल कपूत में आता है।
5. नि. :- सं. निर > प्रा० जी. नि > हि० नि। अर्थ है दूर रहित: निहत्या, निडर निकम्मा।
6. पर:- सं. प्र० > हि० पर, पड़। अर्थ है दूसरी पीड़ी का परपोता, परदादा, परनाना।
7. स:- सं. सु > हि० स (अच्छा) : सपूत।

(3) विदेशी उपसर्ग (फारसी)

1. अल :- (अर) निश्चय, अलमस्त।
2. दर :- मूलतः यह फा. का "दरवाजा" का समानार्थी शब्द दर (सं. द्वार) है अर्थ है "में" दरअसल, दरहकीकत।
3. व :- (फा.) के साथ, "से" बखूबी, बदौलत।
4. बा :- (फा.) "साथ" या "से" बाकायदा, बाजाब्ता, बावजूद।
5. वे :- (फा.) "बिना" (तुलनीय सं. वि), "रहित" बेरहम, बेईमान, बेचारा, बेइज्जती, बेतुका, बेड़ौल, बेचड़क।
6. ला :- (अर.) "अभाव" नहीं, "लापरवाह" लाइलाज, लाजवाब, लाणीरन, लाचार, लासानी।
7. हम :- (फा.) आपस में "साथ", "बराबर", हमदर्द, हमउम्र, हमदम, हम बिस्तर, हमसफर।

अंग्रेजी उपसर्ग :-

1. वाइस :- "उप" वाइस सचांसलर, वाइसचेयरमैन, वाइसप्रेसिडेंट, वाइस-ऐडमिरल, वाइसप्रिसिपल।
 2. सब :- "उप" नायब, "छोटा" सबडिप्टी, इन्सपेक्टर, सबकमिटी, सबइन्सोटर, सबरजिस्ट्रार, सबस्टेशल,
- प्रत्यय :- हिन्दी भाषा में शब्द रचना की जितनी भी पद्धतियाँ अपनायी जाती हैं, उनमें व्युत्पत्ति सर्वश्रेष्ठ है। व्युत्पत्ति पद्धति में उपसर्ग तथा प्रत्यय के सहयोग से नये शब्दों की रचना की जाती है। हिन्दी में एक ही उपसर्ग या प्रत्यय से असंख्य शब्दों की रचना की जा सकती है। वस्तुतः उपसर्ग पर्याप्त समाहार की शक्ति भी इसी कारण है। आज हिन्दी में उर्दू, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, के अलावा जिन प्रांतीय बोलियों एवं भाषाओं को समावेश हो रहा है, वह हिन्दी की शब्द संरचना-क्षमता के कारण ही है और इसमें सर्वाधिक महत्व हिन्दी में प्रयुक्त उपसर्गों एवम् प्रत्ययों का है।

प्रत्यय के भेद :- संस्कृत में प्रत्ययों के दो वर्ग हैं कृत और तद्धित। कृत प्रत्यय धातु के साथ जुड़ते हैं। इसके योग से बने शब्द "कृदन्त" कहे जाते हैं। तद्धित प्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, तथा कृदन्त शब्दों में लगते हैं। प्राकृत में भी प्रत्ययों के उक्त दो वर्ग ही पाये जाते हैं। हिन्दी प्रत्ययों को भी उक्त दो वर्ग में विभक्त किया जा सकता है, किन्तु इसमें बहुत से ऐसे प्रत्यय हैं जो उक्त दोनों वर्गों में नहीं आ सकते। अतः हिन्दी प्रत्ययों को संस्कृत के प्रत्ययों की तरह उक्त दो वर्गों में विभक्त करना सर्वथा अवैज्ञानिक होगा। उपसर्गों की भांति इन्हें भी दो मुख्य वर्गों में विभक्त किया जाता है। वे दो वर्ग हैं। स्वदेशी और विदेशी।

स्वदेशी प्रत्यय :- स्वदेशी प्रत्यय के तीन वर्ग हैं :- तत्सम्, तद्भव, और देशज।

- (1) **तत्सम प्रत्यय :-** हिन्दी के तत्सम प्रत्यय हैं, आ, आलु, इक, इत, इम, इमा, इल, ईन, ईय, ज, ज्ञ, त्व, तः, तम, तया, तर, ता, दा, धा, मय, ल, वर्ती, वान्, शाली आदि।
पहले यह प्रत्यय संस्कृत शब्दों के साथ ही आते थे। किन्तु इधर इसकी स्थिति में परिवर्तन आया है। पारिभाषिक शब्दों तथा कई अन्य उदाहरणों में ये संस्कृत प्रयोगों से अलग भी लगने लगे हैं अतः अब यह हिन्दी के अपने प्रत्यय हो गए हैं। इनका उदाहरण परिचय इस प्रकार है।
- (i) आ :- स्त्री प्रत्यय : आदरणीया, सुता, प्रिया।
(ii) आनी :- स्त्री प्रत्यय : भवानी, मेहतरानी, देवरानी।
(iii) आलु :- विशेषण प्रत्यय : दयालु, कृपालु, श्रद्धालु, निदालु।
(vi) इत :- विशेषण प्रत्यय: पल्लवित, पुष्पित, हर्षित।
(v) इमा :- संज्ञा प्रत्यय : महिमा, गरिमा, नीलिमा।
(vi) इक :- विशेषण तथा संज्ञा प्रत्यय : वैज्ञानिक, दैनिक, वैदिक, लौकिक।
(vii) क :- स्वार्थ, समूह, शतक, घटक, सप्तक, ठंढक।
(viii) कार :- पत्रकार, जानकार।
(ix) ज्ञ :- जाननेवाला, विज्ञ, सर्वज्ञ, अज्ञ, मर्मज्ञ।
(x) तः- क्रियाविशेषण प्रत्यय: सामान्यत, वस्तुत, स्वतः, अंशत।
(xi) तया :- क्रियाविशेषण प्रत्यय सामान्यतया, मुख्यतया, विशेषतया।
(xii) तम :- सर्वाधिकताबोधक प्रत्यय, उच्चतम, निकृष्टम।
(xiii) तर :- तुलनाबोधक प्रत्यय, सुन्दरतर, निम्नतर, उच्चतर।
(xiv) ता :- संज्ञा प्रत्यय, सुन्दरता, नवीनता, मधुरता।
(xv) त्व :- संज्ञा प्रत्यय, ममत्व, महत्व, कृतित्व, सतीत्व।
(xvi) वाज् :- वाला, गुणवान्, धनवान्, रूपवान्।

तद्भव प्रत्यय :- हिन्दी के तद्भाव प्रत्यय भी संस्कृत से विकसित हुए हैं। पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से होते हुए यह हिन्दी तक पहुँचे हैं। अतः तत्सम और विदेशी प्रत्ययों की अपेक्षा यह हिन्दी के अपने प्रत्यय कहे जा सकते हैं। इनका ऐतिहासिक महत्व भी अन्यतम है हिन्दी में इनकी संख्या अत्यधिक है।

- (i) अंगड़ (सं. अंग + प्रा० अट) - बतंगड़।
(ii) अंतू (सं. अत + ऊ) - रटलू, धुमतू। यह संयुक्त प्रत्यय है।
(iii) अत (सं. त्व > प्रा० त) - लिखत, पढ़त, बचत, खपत, रंगत।

- (iv) आँध (सं. आगंध > आइध)– संड़ाध, बिसाँध ।
- (v) आ (सं. अक) – पु० प्रत्यय– घोड़ा, लड़का, अच्छा, बड़ा ।
- (vi) आई (सं. आपिका) – कठिनाई, सफाई, बुराई ।
- (vii) आऊ (सं. तृ + स्वार्थ क) टिकाऊ, खाऊ, बिकाऊ, पंडिताऊ ।
- (viii) आप, आपा (सं. त्व + स्वार्थ क) रंडापा, पुजापा, बुढ़ापा, अपनापा, मिलाप ।
- (ix) आर, आरी, आरा (सं. कार, कारक, कारी) कुम्हार, लुहार, पुजारी, भिखारी, चमार ।
- (x) आलू (सं. आलु) – दयालु, झगड़ालू ।
- (xi) आवट (सं. आप+वृति) बनावट, रूकावट, बिनावट, कसावट, लिखावट ।
- (xii) आस (सं. आशा) – छपास, लिखास, प्यास ।
- (xiii) आहत, आहट (सं. तव्य +क+त्व, प्रा० अव्वट्ट) – भलमनसाहत, गड़गड़ाहट,
चिल्लाहट, धबराहट ।
- (xiv) त् (सं. + क्त) – सोत, खाता, आता, जाता ।

(3) देशज प्रत्यय :- ऐसे प्रत्यय जिनकी व्युत्पत्ति अब तक ज्ञान नहीं हो पायी है। वे "देशज" अथवा "अज्ञात" व्युत्पत्ति वर्ग में रखे गए हैं। हिन्दी में अंकू अक्कूड, अड़, आकू, आटा, इअल आदि प्रत्यय इसी वर्ग के हैं।

1. अक्कड़ :- पियक्कड़, भुलक्कड़, धुमक्कड़ ।
2. अड़ :- अंधड़, भुलखड़ ।
3. आक :- धड़ाक, चटाक, फटाक, धमाका, धड़ाका, पड़ाका ।
4. आटा :- फरीटा, खर्टाटा ।
5. इयल :- अड़ियल, सड़ियल, दढ़ियल ।

(4) विदेशी प्रत्यय :- विदेशी प्रत्ययों के मुख्यतः दो वर्ग हैं- फारसी और अंग्रेजी प्रत्यय ।

1. अन :- मसलन, गालिवन ।
2. आना :- जुर्माना, दस्ताना, मदीना, मस्ताना ।
3. आनी :- जिस्मानी, रूहानी, बर्फीली ।
4. इयत :- इंसानियत, आदमियत, अंग्रेजियत, खैरियत, असलियत ।
5. कार :- सलाहकार, दस्तकार, फास्तकार ।
6. खोर :- गमखोर, रिश्वत खोर, धूसखोर ।

7. गर :- बाजीगर, कारीगर, कीमियागर। इसी से गरी या गिरी भी बनता है। बाबूगिरी
8. गार :- मददगार, परहेजगार, रोजगार, यादगार।
9. गाह :- बन्दरगाह, ईदगाह, चारागाह।
10. गी :- जिन्दगी, गन्दगी।
11. चा, ची :- बगीचा, देगचा, संदूकवी, इलायची, डोलची, बन्दूकची, अफीमची, मशालची आदि। छोटे अर्थ में ये फ़ा० प्रत्यय है तथा वाला अर्थ में "ची" तुर्की प्रत्यय है।
अंग्रेजी प्रत्यय :-
1. इज्म :- कम्यूनिज्म, बुद्धिज्म, सोशलिज्म, शैविज्म।
2. इस्ट :- सोशलिस्ट, मार्क्सिस्ट बुद्धिस्ट।

इस प्रकार हिन्दी में स्वदेशी, विदेशी दोनो ही प्रकार के प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी में तद्भाव प्रत्ययों की संख्या अत्यधिक है। प्रस्तुतः तत्सम प्रत्यय संस्कृत और प्राकृत के अनुकरण पर हैं। देशज स्थानीय बोलियों और उपभाषाओं से लिए गये हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इनका अत्यधिक महत्व है। हिन्दी में विदेशी प्रत्यय उपसर्गों की अपेक्षा कम ही प्रयुक्त होते हैं।

हिन्दी ध्वनि समूह :- हिन्दी ध्वनियों के विकास की एक लम्बी परम्परा है। अधिकार विद्वान यह मानते हैं कि इनके विकास की परम्परा वैदिक भाषा से प्रारंभ होती है। और पालि, प्राकृत और अपभ्रंश होते हुए हिन्दी तक पहुँचाती है। मूल वैदिक ध्वनियों के साथ ही प्राकृत अपभ्रंश की ध्वनियों की संख्या के संबंध में विद्वान एकमत नहीं हैं। मेगडानल, डॉ० देवेन्द्र नाथ शर्मा और डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने वैदिक ध्वनियों की संख्या बारवन मानी है। डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने तिरेपन और डॉ० भोलानाथ तिवारी ने सतावन तक निर्धारित की है। हिन्दी की ध्वनियाँ भारतीय आर्य भाषा से विकसित हुई हैं, परन्तु कुछ ध्वनियाँ आधुनिक काल में स्थानीय तथा विदेशी प्रभाव से विकसित हुई हैं। इस कारण हिन्दी में अरबी-फारसी की ध्वनियों का प्रभाव भी दिखाई देता है। यहाँ साहित्यिक हिन्दी में प्रचलित ध्वनियों का विवेचन उपस्थित किया जा रहा है।

1. प्राचीन ध्वनियाँ

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ओ।

क, ख, ग, घ, ङ।

च, छ, ज, झ, ञ।

ट, ठ, ड, ढ, ण।

त, थ, द, ध, न।

प, फ, ब, भ, म।

य्, र्, ल्, व।

श्, स, ह।

2. नई विकसित ध्वनियाँ

अ ए (ऐ) अओ (औ), ड्, ढ्, व्, न्ह, म्ह।

3. फारसी अरबी के तत्सम शब्दों में प्रयुक्त ध्वनियाँ

क्, ख्, ग्, ज्, फ्।

4. अंग्रेजी तत्सम शब्दों में प्रयुक्त ध्वनियाँ :- ऑ। ऋ, ष, ज, वणी संस्कृत तत्सम शब्दों में लिखे जाते हैं, किन्तु हिन्दी भाषा-भाषी इनकी मूल रूप का उच्चारण नहीं करते। संस्कृत "ऋ" ध्वनियाँ तत्सम शब्दों में भी उच्चारण में "रि" हो गई है। यथा ऋण, कृपा आदि। "ष" का उच्चारण हिन्दी में "श" के समान होता है। यथा पोषक कष्ट, कृषक आदि का उच्चारण पोषक, करट, कृशक है "त्र" ध्वनि संस्कृत शब्दों में स्वतन्त्र रूप से नहीं आती है। शब्द के मध्य में आने वाले "त्र" का उच्चारण साहित्यिक हिन्दी में "न्" के समान होता है। यथा-चञ्चल (चंचल) मज्जु (मन्जु) आदि। तत्सम शब्दों में प्रयुक्त सस्वर "ण" का प्रयोग हिन्दी में होता है, जैसे गणना, कण आदि, किन्तु इसका शुद्ध उच्चारण "ड" के समान होता है। उपर्युक्त ध्वनियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

स्वर ध्वनियाँ

1. **मूलस्वर :-** जिन स्वरों की उत्पत्ति किसी दूसरे स्वरों से नहीं हुई, वे मूल स्वर कहलाते हैं। इन्हें ह्रस्व स्वर और लघु स्वर भी कहते हैं। ये चार हैं- अ, इ, उ, ऋ।
2. **सन्धि स्वर :-** मूल स्वरों के मेल से बने स्वर सन्धि स्वर कहलाते हैं। सन्धि स्वर संख्या में सात हैं। आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ। ये दो प्रकार के होते हैं।

क	ख
दीर्घ स्वर	संयुक्त स्वर
अ, ई, ऊ। ये इस प्रकार से बने हैं- अ + आ = आ, इ + ई = ई उ + उ = ऊ	संयुक्त स्वर चार हैं ए, ऐ, ओ औ। ये इस प्रकार बने हैं- अ + इ = ए, आ + ए = ऐ, आ + उ = ओ, आ + औ = औ। संयुक्त स्वरों को सन्ध्यक्षर भी कहते हैं।

3. उच्चारण काल मान (मात्रा) के अनुसार स्वरों का वर्गीकरण :- उच्चारण काल मान (मात्रा) के अनुसार स्वरों के दो भेद किए जाते हैं लघु स्वर व गुरु स्वर।

(क) लघु स्वर :- अ, इ, उ, ऋ।

(ख) गुरु स्वर :- ई, आ, ऊ, ए, ऐ, ओ, तथा औ। इसके संधि स्वर और संयुक्त स्वर दो भेद हैं।

4. जिह्वा के स्थान (विभाग) के अनुसार स्वरों के भेद :- जिह्वा के स्थान (विभाग) के अनुसार स्वरों के तीन भेद होते हैं -

(क) अग्र स्वर :- इ, ई, ए, ऐ।

(ख) मध्य स्वर :- अ, आ।

(ग) पश्च स्वर :- उ, ऊ, ओ, औ।

5. जिह्वा प्रयत्न (जिह्वा की ऊँचाई) के अनुसार स्वरों के भेद :- जिह्वा की ऊँचाई के अनुसार स्वरों के चार भेद हैं।

क	ख	ग	घ
वृत्त स्वर	अर्द्ध वृत्त स्वर	अर्द्ध-संवृत स्वर	संवृत स्वर
वे स्वर जिनके उच्चारण में मुख विवर पूरा खुला रहता है, उन्हें वृत्त स्वर कहते हैं। यथा अ, आ	जिन स्वरों के उच्चारण में मुख आधा खुलता है उन्हें अर्द्ध वृत्त स्वर कहते हैं। यथा ऐ, औ।	जिन स्वरों के उच्चारण में मुख आधा बन्द रहता है, उन्हें अर्द्ध संवृत स्वर कहते हैं यथा ए, ओ।	संतृत स्वर वे हैं, जिनके उच्चारण में मुख लगभग बन्द रहता है। यथा इ, ई, उ, ऊ।

6. अनानुनासिक और अनुनासिक स्वर :- मुख विवर के साथ साथ नासिका विवर से भी खास वायु निकलने की स्थिति में उच्चारित स्वर अनुनासिक कहते जाते हैं तथा मुख विवर से सम्पूर्ण वायु निकलने की स्थिति में उच्चारित स्वर ध्वनि अननुनासिक होती है। अननुनासिक ध्वनि के उच्चारण में अलिजिह्व नासिका विवर को बन्द कर देता है और अननुनासिक ध्वनि के उच्चारण में मुख विवर और नासिका विवर दोनों खुले रहते हैं। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, आदि स्वर अननुनासिक हैं तथा अँ, आँ, ईँ, ई, उँ, ऊँ, ऐँ, ऐ आदि रूप में उच्चारित स्वर अनुनासिक या सानुनासिक हैं।

व्यंजन ध्वनियाँ

व्यंजन की परिभाषा :- “व्यंजन” वह ध्वनि है, जिसके उच्चारण में हवा गति से नहीं निकल पाती या तो पूर्णतः अवरुद्ध होकर आगे बढ़ना पड़ता है या संकीर्ण मार्ग से धृषण खाते हुए निकलना पड़ता है, या मध्य रेखा से हटकर या दोनों पारतों से निकलना पड़ता है, या भाग को कम्पित करते हुए निकलना पड़ता है इस प्रकार वायु मार्ग में पूर्ण या अपूर्ण अवरोध उपस्थित होता है।

व्यंजनों का विभाजन :- व्यंजनों का विभाजन दो आधारों पर किया जाता है— स्थान के आधार पर तथा प्रयतन के आधार पर।

1. स्थान के आधार पर व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण :- स्थान से अभिप्राय है ध्वनि यंत्र का स्थान, जिससे कोई ध्वनि उच्चारित होती है। स्थान के आधार पर हिन्दी व्यंजनों का वर्गीकरण अग्रलिखित प्रकार से किया जा रहा है।
 - (क) स्वर यन्त्र मुखी :- ये वे ध्वनियाँ हैं, जो स्वर यन्त्र से उच्चारित होती हैं। “ट्ट” ट्ट।
 - (ख) उपालिसिह्वीय :- ये ध्वनियाँ जो स्वर यन्त्र और अलिजिह्वा के बीच में उपस्थित जिह्व या गलबिल में पैदा होती हैं। हिन्दी में यह ध्वनि नहीं है।
 - (ग) अलिजिह्वीय :- ये वे ध्वनियाँ हैं, जो कौवे या अलिजिह्व से उच्चारित होती हैं जैसे क ख ग।
 - (घ) कोमलतालव्य :- इन्हें कण्ठ्य ध्वनि भी कहते हैं जो ठीक नहीं है। इनका उच्चारण कण्ठ से नहीं अपितु कोमल तालु से होता है। क, ख, ग, घ, ङ, व इसी प्रकार की ध्वनि है।
 - (ङ) मूर्द्धय :- मूर्द्धा से उत्पन्न ध्वनियों को मूर्द्धय ध्वनि कहते हैं। ट, ठ, ड, ढ, ण, ङ, ढू।
 - (च) कठोर तालव्य या तालव्य ध्वनियाँ :- ये ध्वनियाँ जो कठोर तालु से उत्पन्न होती हैं, जैसे च, छ, ज, झ, ञ, य, श्।
 - (छ) वत्स्य :- ये वे ध्वनियाँ हैं, जो मसूड़े या वत्स की सहायता से उत्पन्न होती हैं, जैसे न्, न्ह, ल्, र, स, ज।
 - (ज) दन्त्य :- दाँतों की सहायता से उच्चारित होने वाली ध्वनियाँ दन्त्य ध्वनियाँ कहलाती हैं।
 - (झ) दन्त्योष्ठ्य :- ये वे ध्वनियाँ हैं, जो ऊपर के दाँत और नीचे के ओठ से उच्चारित होती हैं। जैसे त्, थ, द्, ध।
 - (ण) ओष्ठ्य :- जिनका उच्चारण दोनों ओठों से हो। यथा—प, फ, ब, भ, म, म्ह, व।
2. प्रयतन के आधार पर :- किसी ध्वनि के उच्चारण में जो प्रयतन करना पड़ता है, उसके आधार पर हिन्दी व्यंजनों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।
 - (1) संधर्षी :- वे ध्वनियाँ जिनके उच्चारण में दो अंग एक दूसरे के इतने निकट आ जाते हैं कि हवा को दोनों के बीच से धर्षण करके निकलना पड़ता है, संधर्षी ध्वनियाँ कहलाती हैं। यथा ह, ख, ग, शु, स, ज, फ, ब।

- (2) स्पर्श :- वे ध्वनियाँ जिनके उच्चारण में दो अंग एक दूसरे का स्पर्श करके हवा को रोकते हैं और फिर एक दूसरे से अलग होकर बाहर जाने देते हैं, स्पर्श ध्वनियाँ कहलायी हैं।
क, ख, ग, घ, ठ, ट, ड, ढ, त, थ, द, ध, प, फ, ब, भ।
- (3) स्पर्श संधर्षी :- ऐसी ध्वनियाँ का आरंभ स्पर्श से हो, किन्तु उन्मोचन झटके के साथ या एक साथ ना होकर धीरे धीरे हो, जिसका फल यह होता है कि कुछ देर तक हवा को धर्षण करके निकलना पड़ता है, उन्हें स्पर्श-संधर्षी ध्वनि कहते हैं यथा च, छ, ज, झ।
- (4) नासिक्य या अनुनासिक :- वे व्यंजन जिनके उच्चारण में हवा मुख में गूँजती हुई नाक से निकलती है, वे नासिक्य या अनुनासिक कहलाती हैं—
जैसे— ङ, ञ, ण, न, म्, म, न्ह।
- (5) पार्श्विक :- इन ध्वनियों के उच्चारण में मुँह की मध्य रेखा कहीं पर भी दो अंगों के सहारे वायु मार्ग को अवरुद्ध कर देती है। फलतः हवा एक या दो पार्श्वों से निकलती है। यथा ल्।
- (6) लुंठित :- जीभ के नोक को कुछ बेलन की तरह लपेटकर या लुंठन करके तालु का स्पर्श करके यह ध्वनि उत्पन्न की जाती है, जैसे र।
- (7) उक्षिप्त :- जीभ के लपेटकर तालु को झटके से मार उसे फिर सीधा कर लेने से जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे उक्षिप्त कहते हैं जैसे ङ, ढ। हिन्दी ध्वनियों का विकास परम्परागत है उनका विकास वैदिक ध्वनियों से संस्कृत, पालि, प्राकृत, और अपभ्रंश होते हुआ है। ध्वनियों के विकास में इसका अपना योगदान भी है। इसने ङ, ढ, न्ह, म्, ल्ह, ऐ औ आदि ध्वनियों को विकसित किया है और क, ख, ग, ज, फ, ऑ, को फारसी और अंग्रेजी से लिया है। यह इसकी विकासशील प्रवृत्ति का परचायक है।

निष्कर्ष :- हिन्दी ध्वनियों की उत्पत्ति परम्परागत है। सामान्यतया हिन्दी ध्वनियाँ प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की ध्वनियों तथा उसके संयुक्त रूपों से विकसित हुई है। कतिपय ध्वनियों का विकास भिन्न ध्वनियों से भी हुआ है किन्तु अनुनासिक स्वरों का विकास हिन्दी की मौलिक प्रवृत्ति है। संस्कृत में अनुनासिक स्वरों का पूर्ण रूपण अभाव है। हिन्दी में प्रायः सभी मूल स्वरों के अनुनासिक रूप भी विद्यमान है।

स्रोत : डॉ० भोलानाथ तिवारी— हिन्दी भाषा

प्रो० राजकुमार शर्मा — हिन्दी साहित्य गाइड

डॉ० पीताम्बर सर्रोदय

डॉ० कर्ण सिंह